बंगला उपन्यास 'शेषेर कविता' का अनुवाद

अनुवादक

श्रीरामनाथ 'सुमन'

ल्य : एक रुपया

प्रकाशक : हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटि
जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ल

मुद्रक : हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली

JUDAI KI SHAM : RAVINDRA NATH THAKUR : NOVE

१

अमित-चरित

अमित राय बैरिस्टर है। जब उसकी 'राय' पदवी अंग्रेज़ी रंग में रंगकर 'रॉय' और 'रे' हो गई, तब उसकी शोभा तो जाती रही किन्तु अक्षर-संख्या में वृद्धि हो गई। इसी वजह से, नाम को असामान्य बनाने की इच्छा से अमित ने उसे ऐसा रूप दे दिया जिससे अंग्रेज़ भाई-बहिनों के मुंह से उसका उच्चारण बन गया—'अमिट राए'।

अमित के बाप दिग्विजयी बैरिस्टर थे। वे जिस परिमाण में रुपया जमा कर गए थे वह आगे आनेवाली तीन पीढ़ियों के अधःपात के लिए काफी था। किन्तु पैतृक सम्पत्ति की इस घातक मार से भी अमित साफ बचकर निकल गया।

कलकत्ता विश्वविद्यालय के बी० ए० के कोठे के अन्दर पांव रखने के पहले ही अमित आक्सफोर्ड में भरती हो गया। वहां परीक्षा देते-देते और न देते-देते उसके सात साल बीत गए। अक्ल ज़्यादा होने के कारण उसने अधिक पढ़ाई-लिखाई तो की नहीं, परन्तु विद्या में, ज्ञान में कुछ कम नहीं जान पड़ता। उसके बाप ने उससे कोई असाधारण आशा रखी भी नहीं थी। उनकी इच्छा इतनी ही थी कि उनके इकलौते लड़के के मन पर आक्सफोर्ड का रंग ऐसा पक्का हो जाए कि स्वदेश लौटने पर भी उसमें ज़रा भी फीकापन न आने पाए।

अमित को मैं पसन्द करता हूं। अच्छा लड़का है। मैं ठहरा नया लेखक; मेरे पाठक संख्या में थोड़े हैं, किन्तु उन सबके बीच, योग्यता में अमित श्रेष्ठ है। मेरी रचनाओं की चमक-दमक उसकी आंखों में खूब

समाई हुई है। उसका विश्वास है कि "हमारे देश के साहित्य के बाज़ार में जिनका नाम है, उनके पास स्टाइल (शैली) नहीं है। जीव-सृष्टि में ऊंट नामक जीव की जो स्थिति है, वही स्थिति इन लेखकों की रचनाओं की भी है। कंधा और गला, आगे और पीछे, पीठ और पेट सब बेढंगे; चाल शिथिल और लड़खड़ाती हुई; बंगला-साहित्य की मरुभूमि में ही उसका चलन है।" पर मैं समालोचकों से पहले ही कह देना चाहता हूं कि यह मेरी अपनी राय नहीं है।

अमित कहता है कि "फैशन है मुखौटा (मुख पर लगाने का नकली चेहरा) और स्टाइल (शैली) है 'मुखश्री'। उसकी राय में साहित्य के सामन्ती दल में से जो अपने मन से चलते हैं, स्टाइल बस उन्हींकी चीज़ है। जो लोग अमला या निम्न कर्मचारी-वर्ग के हैं और देश के लोगों का मन रखना ही जिनका पेशा है, फैशन उन्हींका है। बंकिम[1] की शैली बंकिम के 'विषवृक्ष' (उपन्यास) में है; उसमें बंकिम ने अपने को निभा लिया है। बंकिमी फैशन का दर्शन नसिराम-लिखित 'मनमोहन के मोहन बागान' में है; उसमें नसिराम ने बंकिम को मिट्टी कर दिया है। ... यारी'[2] में, तम्बू-कनात के नीचे पेशावर नर्तकियों के दर्शन होते हैं किन्तु शुभदृष्टि के समय, वधू का मुख देखने की वेला में बनारसी दुपट्टे के घूंघट की आवश्यकता होती ही है। कनात हुआ फैशन का पदार्थ और बनारसी घूंघट हुआ स्टाइल का पदार्थ—विशेष के मुंह को विशेष रंग की छाया में देखने के लिए।" अमित फिर कहता है, "बाज़ार-हाट के लोगों के पैदल चलने से बने हुए रास्ते से बाहर चलने में हमारे पांवों को विश्वास ही नहीं होता, तभी तो हमारे देश में स्टाइल का इतना अनादर है। दक्ष-यज्ञ की कथा में इसकी पौराणिक व्याख्या मिलती है। इंद्र, चन्द्र और वरुण स्वर्ग के फैशनवाले देवता थे; यज्ञ के क्षेत्र में उन्हें निमंत्रण भी मिल जाता था। पर शिव थे स्टाइल, इतनी ओरिजिनल (मौलिक) स्टाइल कि मंत्रपाठी यजमान लोग उन्हें हव्य-कव्य देना भी वेद-विरुद्ध समझते थे।" आक्सफोर्ड के ग्रेजुएट के मुंह से ये बातें सुनना

---

१. बंगला के प्रसिद्ध पुराने विचारक और उपन्यासकार; 'वन्दे मातरम्' के रचयिता
२. बंगालियों का सामूहिक पूजा-स्थान

मुझे अच्छा लगता है; क्योंकि मेरा विश्वास है कि मेरे लिखने में एक स्टाइल है, और इसीलिए मेरी सारी पुस्तकें एक संस्करण में ही कैवल्य प्राप्त कर लेती हैं; उनका फिर जन्म नहीं होता।

मेरे साले नवकृष्ण को अमित की ये सब बातें बिलकुल सहन नहीं होतीं। कहता है, "रखे रहो तुम अपना आक्सफोर्ड का पास!" वह ठहरा अंग्रेजी-साहित्य में रोमहर्षक एम० ए०; उसे पढ़ना पड़ा है अधिक और समझना पड़ा है कम। उस दिन उसने मुझसे कहा, "अमित जो छोटे लेखकों को बढ़ाया करता है, वह बड़े लेखकों को गिराने के लिए ही। अवज्ञा का ढोल पीटना उसके लिए एक शौक है और तुम्हें उसने बनाया है अपने ढोल की मूंगरी।" दुःख की बात तो यह है कि जब वह आलोचना कर रहा था तब उस जगह मेरी श्रीमतीजी, खास उसकी सहोदरा भी उपस्थित थीं। सन्तोष इतना ही है कि मेरे साले की बात उन्हें बिलकुल अच्छी नहीं लगी। देखता हूं कि अमित के साथ ही उनकी रुचि ज़्यादा मिलती है, यद्यपि उनकी पढ़ाई-लिखाई ज़्यादा नहीं हुई है। स्त्रियों की स्वाभाविक बुद्धि आश्चर्यजनक होती है।

जब मैं देखता हूं कि कितने ही नामी अंग्रेज़ लेखकों को भी नगण्य कहते हुए अमित की छाती नहीं दहलती, तब मेरे मन में भी खटका होने लगता है। वे हैं जिन्हें बहू बाज़ार[1] का चालू लेखक कहा जा सकता है, बड़ा बाज़ार छाप प्रशंसा करने के लिए जिनकी रचनाएं पढ़ने की भी आवश्यकता नहीं होती; आंख बन्द करके गुणगान करने से ही जिन्हें पास मार्क मिल जाते हैं। अमित के लिए भी इनकी रचनाएं पढ़कर देखना अनावश्यक है; आंख मूंदकर निन्दा करने में उसे कोई बाधा नहीं होती। असल में जो नामी लेखक हैं वे उसके लिए ज़्यादा सरकारी हैं—बर्दवान स्टेशन के वेटिंग रूम की तरह। और जिनका उसने स्वयं आविष्कार किया है, पता लगाया है, उनपर उसका विशेष अधिकार है; वे स्पेशल ट्रेन के सैलून की तरह हैं।

अमित का नशा ही स्टाइल (शैली) को लेकर है, केवल साहित्य-निर्वाचन के कार्य में ही नहीं, वेश-भूषा और व्यवहार में भी वही बात

---

१. कलकत्ता का एक मुहल्ला जहां से व्यावसायिक साहित्य अधिक परिमाण में निकलता है।

है। उसके चेहरे पर ही एक विशेष छाप है—पांच के वीच वह सामान्य एक नहीं है। वह बिलकुल अलग, पांचवां है। सवको भूलकर उसपर दृष्टि पड़ती है। दाढ़ी-मूंछ सफाचट, मंजा-घिसा चिकना श्याम वर्ण परिपुष्ट मुंह, स्फूर्तिपूर्ण भाव, नयन चंचल, हंसी चंचल, हिलना-डुलना, चाल-ढाल चंचल; किसी वात का जवाव देने में उसे ज़रा भी देर नहीं लगती और मन उसका ऐसे चकमक पत्थर के समान है कि ठन से किसी वस्तु से टकराते ही चिनगारियां फेंकने लगता है। प्राय: देशी कपड़ा पहनता है, क्योंकि उसके दल के अन्य लोग नहीं पहनते। सादा थान या विना किनारे की धोती पहनता है पर अच्छी तरह चुन्नट पड़ी हुई, क्योंकि उसकी उम्र के लोगों में उस तरह की धोती पहनने का चलन नहीं है। पंजावी कुर्ता पहनता है जिसमें वायें कंधे से दाहिनी कमर तक वटन लगे रहते हैं और आस्तीनें सामने से कोहनी तक दो हिस्सों में वंटी होती हैं, कमर में धोती को घेरकर एक चौड़ा कत्थई रंग का ज़रीदार फीता रहता है जिसमें वाईं तरफ वृन्दावनी छींट की एक छोटी थैली लटकती रहती है, इस थैली में वह घड़ी रखता है। पांव में रहता है सफेद चमड़े पर लाल चमड़े का काम किया हुआ कटक का वना जूता। जव वाहर जाता है, तव तह किया हुआ किनारीदार मद्रासी दुपट्टा वायें कंधे से घुटने तक लटकता रहता है। जव मित्रों के यहां किसी निमंत्रण में जाना होता है, तव सफेद कपड़े पर सफेद कामवाली मुसलमानी लखनौआ (दुपलिया) टोपी पहन लेता है। इसे ठीक पोशाक नहीं कहा जा सकता; यह उसका एक प्रकार का उच्च हास्य है। उसकी विलायती पोशाक का मर्म भी मेरी समझ में नहीं आता; जो समझते हैं उनका कहना है कि ढीली-ढाली तो है पर है ऐसी जिसे अंग्रेज़ी में डिस्टिंग्विश्ड (विशेषतावोधक) कहते हैं। अपने को असाधारण, अपूर्व दिखाने का शौक उसे नहीं है, परन्तु फैशन की हंसी उड़ाने का कौतुक उसमें वहुत ज़्यादा है। जन्मपत्री के अनुसार जो युवक कहे जा सकते हैं ऐसे लोग तो रास्ता चलते हर जगह मिल जाया करते हैं, परन्तु अमित का दुर्लभ युवकत्व उसकी निर्जला या विशुद्ध जवानी की ही वदौलत है। वह विलकुल वेहिसाव और उड़ाऊ वाढ़ की तरफ वाहर की ओर वहा चला जानेवाला है—अपने साथ सव कुछ वहाए लिए जा रहा है, अपने पास कुछ भी सुरक्षित

नहीं रखना चाहता।

इधर उसकी दो बहिनें हैं, जिनके बुलाने के घरेलू नाम हैं, सिसी और लिसी; जैसे नूतन बाज़ार[1] में बिलकुल ताज़ी आई हुई सब्ज़ी, फैशन की टोकरी में आपादमस्तक बड़े यत्न से पैक किए हुए एक नम्बर के पैकेटों की तरह। ऊंचे खुर के जूते हैं; खुली छातीवाली जाकेट के ऊपर पीत-रंग-मिश्रित मूंगे की माला है और शरीर पर तिरछी भंगी से कसकर लिपटी साड़ी है। वे खट्-खट् करती तेज़ी से चलती हैं। ऊंचे स्वर में बोलती हैं। उनके स्तर-स्तर में सूक्ष्म हंसी तरंगित रहती है। मुंह ज़रा टेढ़ा करके मुस्कान-भरी ऊंची-तिरछी नज़र से देखती हैं; वे जानती हैं कि भाव-भरी चितवन किसे कहते हैं। क्षण-क्षण में गुलाबी रेशम का पंखा अपने गालों के पास फुर-फुर डुलाती हैं और पुरुष-मित्रों की कुर्सी के हत्थे पर बैठकर उसी पंखे के आघात से उनकी बनावटी होड़ पर बनावटी विरोध प्रकट किया करती हैं।

अपने दल की नारियों के साथ अमित का जो व्यवहार है उसे देख-कर उसके दल के पुरुषों के मन में ईर्ष्या उत्पन्न होती है। विशेष रूप से स्त्रियों के प्रति अमित की उदासीनता नहीं है, न विशेष भाव से उसमें किसीके प्रति आसक्ति ही देखने में आती है। पर इसके कारण सामान्यतः कहीं मधुर रस का अभाव नहीं रहता। थोड़े में कहना चाहें तो कह सकते हैं कि स्त्रियों के बारे में उसे आसक्ति नहीं है, उत्साह है। अमित पार्टियों में भी जाता है, ताश भी खेलता है, स्वेच्छा से बाज़ी भी हार जाता है, जिस रमणी का गला बेसुरा होता है, उससे फिर गाने का हठ भी करता है; किसीको बदरंग कपड़ा पहने देखकर पूछता है, 'यह कपड़ा किस दूकान पर मिलता है?' जिस किसी भी आलापिता के साथ बात करता है, तो विशेष पक्षपात के स्वर में ही बात करता है। फिर भी सब जानते हैं कि उसका पक्षपात भी बिलकुल निरपेक्ष ही होता है। जो मनुष्य अनेक देवताओं का पुजारी है, वह आड़ में, अकेले, सभी देवताओं को 'सब देवताओं में श्रेष्ठ' कहकर स्तुति करता है। देवताओं से भी यह बात छिपी नहीं रहती, फिर भी वे खुश होते हैं। लड़कियों की

---

१. कलकत्ता का एक बाजार जहां शाक-सब्ज़ी बिकती है।

माताओं की आशा तो किसी तरह कम नहीं होती, किन्तु लड़कियां समझ चुकी हैं कि अमित आकाश में खिची वह सुनहली रेखा है जो पकड़ में होते हुए भी कभी पकड़ में आनेवाली नहीं है। स्त्रियों के बारे में उसका मन केवल तर्क किया करता है, पर किसी मीमांसा पर, निष्कर्ष पर नहीं पहुंचता। इसीलिए बातचीत के अगम्य मार्ग में उसका इतना दुस्साहस है; और इसीसे वह सहज ही सबके साथ मेल-मिलाप और मित्रता कर सकता है—पास में जलानेवाली वस्तु रहने पर भी वह उसकी जलनशक्ति से, आग्नेयता से बिलकुल सुरक्षित है।

उस दिन पिकनिक में, गंगा-तट पर जब उस पार की घनी काली पुंजीभूत स्तब्धता के ऊपर चांद निकल आया, तब उसके पास थी लिली गांगुली। उससे वह मृदु स्वर में बोला, "गंगा के उस पार वह नूतन चांद है, और इस पार तुम और हम हैं। ऐसा समावेश अनन्त काल में फिर किसी दिन नहीं होगा।"

पहले तो क्षण-भर के लिए लिली गांगुली का मन तरंगित हो उठा—किन्तु वह जानती थी कि इस बात में जो कुछ सत्य है वह केवल उस कहने के ढंग-भर में है। उससे ज़्यादा समझना ऐसा ही है जैसे बुलबुले के ऊपर के रंग को पकड़ने की चेष्टा करना। इसीलिए अपने को क्षण-भर की मूर्च्छना से अलग धकेलकर लिली हंस पड़ी और बोली, "अमिट, तुमने जो कहा है वह इतना अधिक सत्य है कि कहने की ज़रूरत ही नहीं। अभी-अभी जो एक मेंढक टप्-से पानी में कूद पड़ा वह भी तो इस अनन्त काल में फिर नहीं होने का।"

अमित हंस पड़ा। बोला, "दोनों में अन्तर है लिली; बहुत बड़ा अन्तर है। आज की संध्या में उस मेंढक का टप्-से कूदना एक विशृंखल वस्तु है। किन्तु तुममें, मुझमें, चांद में, गंगा की धारा में, आकाश के तारों में तान-स्वर की पूर्ण एकता है, सृष्टि में सामञ्जस्य है। यह बेटोफेन[1] का चन्द्रलोकपूर्ण गान है। मेरे मन में तो आता है कि इस विश्वकर्मा के कारखाने में कोई एक पागल स्वर्गीय सुनार है। उसने ज्योंही एक निर्दोष स्वर्णगोलक में नीलम के साथ हीरा और हीरा के साथ पन्ना

१. यूरोप का प्रसिद्ध संगीतकार

लगाकर एक पहर की अंगूठी पूरी की, त्योंही उसे समुद्रजल में फेंक दिया—अब उसे खोजकर कोई पा नहीं सकता।"

"चलो अच्छा हुआ, तुम्हारी चिन्ता मिट गई अमिट। अब विश्व-कर्मा के उस सुनार का विल तुम्हें चुकाना न पड़ेगा।"

"किन्तु, लिली, कोटि-कोटि युगों के वाद मंगलग्रह के लाल अरण्य की छाया में, किसी हज़ारों कोस तक फैली नहर के तट पर एकाएक अगर मेरी-तुम्हारी भेंट हो ज़ाए और यदि शकुन्तला का वह मांझी किसी मछली का पेट चीरकर आज के इस अपूर्व सुनहले क्षण को हमारे सामने ला धरे और हम चौंककर एक-दूसरे का मुंह देखते रह जाएं तव क्या होगा, इसका विचार तो करो।"

लिली ने अमित को पंखे की डंडी से मारकर कहा, "उसके वाद वह सुनहला क्षण अनमना होकर समुद्र के जल में जा गिरेगा। फिर उसे प्राप्त न किया जा सकेगा। उस पागल सुनार के गढ़े हुए ऐसे तुम्हारे कितने ही क्षण खिसककर गिर गए हैं, पर तुम उन्हें भूल गए हो, इसीसे उनका कोई हिसाब नहीं रहा।"

इतना कहकर लिली चटपट उठकर अपनी सहेलियों से जा मिली। इस प्रकार की वहुत-सी घटनाओं में से एक घटना का नमूना-मात्र यहां दिया गया है।

अमित की वहिनें, सिसी और लिसी उससे कहतीं, "अभी, तुम व्याह क्यों नहीं करते?"

अमित कहता, "व्याह के काम में सवसे ज़रूरी है पात्री, उसके वाद ही नम्वर आता है पात्र का।"

सिसी कहती, "तुमने तो अवाक् कर दिया अभी; इतनी सारी लड़कियां तो हैं।"

अमित कहता, "लड़कियों से व्याह होता था उस पुराने ज़माने में, लक्षण मिलाकर। मैं चाहता हूं ऐसी पात्री, अपना परिचय ही जिसका परिचय हो और वह हो जगत् में अद्वितीय।"

सिसी कहती, "तुम्हारे घर आते ही तुम हो जाओगे प्रथम और वह हो जाएगी द्वितीय, तुम्हारा परिचय ही होगा उसका परिचय।"

अमित कहता, "मैं मन ही मन जिस लड़की की व्यर्थ प्रत्याशा में पड़ा हुआ उम्मीदवारी कर रहा हूं, वह बेठिकाने की लड़की है। प्रायः वह घर तक पहुंच नहीं पाती। वह आकाश से गिरता हुआ तारा है, जो हृदय के वातावरण को स्पर्श करते न करते ही जल उठता है, हवा में विलीन हो जाता है, इस घर की मिट्टी तक आ ही नहीं पाता।"

सिसी कहती, "यानी वह तुम्हारी बहिनों जैसी बिलकुल नहीं है।"

अमित कहता, "यानी वह घर में आकर घर के आदमियों की तादाद में वृद्धि नहीं करती।"

लिसी कह उठती, "अच्छा, बहिन सिसी, बिमी बोस तो अमी के लिए राह में आंखें बिछाए बैठी हुई है, इशारा करते ही दौड़कर आ पहुंचती है। वह इन्हें क्यों पसन्द नहीं आती ? कहते हैं, उसमें कल्चर नहीं है। क्यों बहिन, वह तो एम० ए० बॉटनी में फर्स्ट आई है। विद्या को ही तो कल्चर कहते हैं।"

अमित कहता, "हां, कमल-हीरे के पत्थर को ही विद्या कहते हैं और उससे जो ज्योति फूटती है वह है कल्चर। पत्थर में वज़न है, पर प्रकाश में दीप्ति है।"

लिसी गुस्से में आकर कहती, "हिश ! बिमि बोस का आदर भी नहीं है इनके निकट। ये क्या खुद उसके लायक हैं। अब अगर अभी बिमि बोस से ब्याह करने के लिए पागल भी हो जाएं तो मैं उसे सावधान कर दूंगी कि वह इनकी ओर मुंह करके ताके भी नहीं।"

अमित कहता, "पागल हुए बिना मैं बिमि बोस से ब्याह करना ही क्यों चाहूंगा ! उस समय मेरे ब्याह की चिन्ता छोड़कर उपयुक्त चिकित्सा की चिन्ता करनी होगी।"

आत्मीय स्वजनों ने तो अमित के ब्याह की आशा ही छोड़ दी है। उन्होंने मान लिया है कि विवाह की ज़िम्मेदारी उठाने की योग्यता ही नहीं है उसमें, इसीसे वह केवल असंभव का स्वप्न देखकर और उलटी-पलटी बातें करके लोगों को चौंकाता रहता है। वह उस प्रेतदीप की तरह है जो हाट-बाट सर्वत्र धोखा ही देता है, कभी पकड़ में नहीं आता।

इन दिनों अमित जहां-तहां 'हा-हा' करता फिरा करता है;

'फिरपो'[1] में जिसे-तिसे चाय पिलाया करता है, जब-तब मित्रों को मोटर में बिठाकर व्यर्थ घुमा लाता है; यहां-वहां से न जाने क्या-क्या खरीदता और न जाने किसे-किसे बांट देता है, अंग्रेज़ी पुस्तकें तुरन्त खरीदकर इस-उस घर में डाल आता है, और फिर उन्हें वहां से लाना नहीं जानता।

उसकी बहिनें उसकी जिस आदत से सबसे अधिक नाराज़ रहती हैं, वह है उलटी बात करने का उसका ढंग। सज्जनों की मण्डली में जो बात सब मानते होंगे, उसके भी विरुद्ध वह कुछ न कुछ कह बैठेगा।

एक दिन की बात है कि कोई राष्ट्रतत्त्ववेत्ता डेमोक्रेसी (प्रजातंत्र) के गुण वर्णन कर रहा था, तब वह (अमित) कह उठा, "विष्णु ने जब सती की मृत देह को टुकड़े-टुकड़े कर डाला, तब देश-भर में जगह-जगह उसके एक सौ से अधिक पीठस्थान बन गए। इसी तरह डेमोक्रेसी ने अनेक रूपों में, अनेक टुकड़ों में अरिस्टोक्रेसी (कुलीनतंत्र) की पूजा जगह-जगह शुरू कर दी है; इन खण्ड अरिस्टोक्रेसियों से पृथ्वी छा गई है—कहीं पॉलिटिक्स (राजनीति) में, कहीं साहित्य में, कहीं समाज में वही वह है। इनमें से किसीमें गहराई नहीं है, क्योंकि उन्हें खुद अपने पर ही विश्वास नहीं है।"

इसी प्रकार एक दिन स्त्रियों पर पुरुषों के आधिपत्य-सम्बन्धी अत्याचार की बात लेकर कोई समाज-हितैषी अबलाओं का बंधु पुरुषों की निन्दा कर रहा था। अमित मुंह से सिगरेट हटाकर तुरन्त बोल उठा, "पुरुषों के आधिपत्य छोड़ देने पर स्त्रियां आधिपत्य शुरू कर देंगी। दुर्बल का आधिपत्य तो बड़ा भयंकर होता है।"

सभा में बैठी अबलाएं और उनके मित्र गरम होकर बोले, "इसका मतलब?"

अमित ने कहा, "जिस दल के हाथ में सांकल है वह उसी सांकल से अर्थात् अपने ज़ोर से पक्षी को बांधता है। जिसके पास सांकल नहीं है वह अफीम खिलाकर अर्थात् माया से उसे बांधता है। सांकल-वाला बांधता ज़रूर है किन्तु भरमाता नहीं; अफीमवाली बांधती भी

---

१. कलकत्ताका एक प्रसिद्ध होटल एवं जलपानगृह

है और भरमाती भी है। स्त्रियों की डिब्बी अफीम से भरी हुई है और प्रकृति-राक्षसी भी उसे मदद देती रहती है।"

एक दिन उन लोगों की वालिगंज की एक साहित्य-गोष्ठी में आलोचना का विषय था—'रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविता'। अमित अपने जीवन में पहली वार उसमें सभापति वनने को राजी हुआ था; वहां गया था मन ही मन युद्ध की तैयारी करके। एक पुराने युग के भलेमानस वक्ता थे। रवीन्द्रनाथ की कविता भी कविता ही है—यही प्रमाणित करना उनका उद्देश्य था। दो-एक कालेज के अध्यापकों के सिवा अधिकांश सभ्यों ने स्वीकार किया कि प्रमाण एक प्रकार से सन्तोषजनक है।

सभापति ने उठकर कहा, "कवि-मात्र के लिए उचित है कि वह केवल पांच वर्ष की अवधि में कविता करे—पचीस से तीस वर्ष की उम्र के वीच। हम यह वात नहीं कहेंगे कि परवर्ती कवियों से हम और भी अच्छी चीजें चाहते हैं; इतना ही कहेंगे कि 'हम और कुछ चाहते हैं।' फज़ली के आम चुक जाने पर यह न कहेंगे कि 'फज़ली से वढ़िया आम लाओ।' कहेंगे—'नूतन वाज़ार से छांटकर वड़े-वड़े शरीफे लाओ।' कच्चे नारियल (डाव) की मियाद थोड़ी होती है, वह रस की मियाद है; पक्के नारियल की मियाद ज़्यादा होती है, वह गिरी की मियाद है। कविगण होते हैं क्षणजीवी; फिलासफर (दार्शनिक) की उम्र का अन्त नहीं।··· रवि ठाकुर के विरुद्ध सवसे वड़ी शिकायत यह है कि ये भलेमानस बूढ़े वड्र्सवर्थ की नकल करके अन्यायपूर्वक ज़िन्दा हैं। यमराज वत्ती वुझाने के लिए रह-रहकर फर्राश भेज रहे हैं, फिर भी ये महाशय कुर्सी का हत्था पकड़े खड़े के खड़े हैं। वे अगर सम्मानपूर्वक स्वयं सभा का त्याग कर हट नहीं जाते, तो हमारा कर्तव्य है कि हम दल वांधकर स्वयं सभा से उठकर चले जाएं। उनके वाद जो आएंगे वे भी ताल ठोंककर गर्जते-गर्जते आएंगे कि उनके राजत्व का भी अन्त नहीं होगा; उनके दरवाज़े पर अमरावती इस मृत्युलोक से वंधी खड़ी रहेगी। कुछ समय तक भक्तगण माला-चन्दन चढ़ाएंगे, भरपेट खाने को देंगे, साष्टांग प्रणाम करेंगे; किन्तु इसके वाद आएगा उन्हें वलि देने का पवित्र दिन—भक्तिवंधन से भक्तों के छूटने की शुभ घड़ी। अफ्रीका में चतुष्पद देवता की पूजा-पद्धति इसी तरह की है। द्विपद, त्रिपद, चतुष्पद और चतुर्दशपद देवताओं

की पूजा का भी यही नियम है। पूजा जैसी चीज़ को एकरस कर देने जैसी अपवित्र अधार्मिकता और कुछ हो ही नहीं सकती।.........अच्छा लगने का ऐवोल्यूशन (विकास) होता है। पांच साल पहले का अच्छा लगना पांच साल के बाद भी एक ही जगह खड़ा रहे तो समझ लेना पड़ेगा कि बेचारा जान ही नहीं सका कि वह मर चुका है। ज़रा-सा धक्का लगते ही उसे स्वयं मालूम हो जाएगा कि सेण्टीमेण्टल (भावुक) आत्मीयजनों ने उसका अन्त्येष्टि-संस्कार करने में विलम्ब कर दिया है, जान पड़ता है, उपयुक्त उत्तराधिकारी को सदैव के लिए वंचित रखने के मतलब से। रवि ठाकुर के दल के इस अवैध षड्यंत्र को पब्लिक (सर्वसाधारण) के सामने प्रकट करने की प्रतिज्ञा मैंने की है।"

अपने मणिभूषण ने चश्मे की झलक मारते हुए प्रश्न किया, "आप साहित्य से लायल्टी (वफादारी) उठा देना चाहते हैं?"

"पूरी तरह से। अब आया है कवि-प्रेसीडेंट का तेज़ी से समाप्त होने-वाला युग। रवि ठाकुर के विषय में हमारा द्वितीय वक्तव्य यह है कि उनकी रचना-रेखा उन्हींके हाथ के अक्षरों जैसी[1] है, गोल वा तरंग-रेखा, गुलाब या नारीमुख अथवा चन्द्र के ढंग की। वह प्रिमिटिव (आदि-सृष्टि-कालिक) हैं; प्रकृति के हाथ के अक्षरों के समान। नूतन प्रेसीडेंट से हम कड़ी और खड़ी लाइन की रचना चाहते हैं—तीर के समान, बर्छे के फल के समान, कांटे के समान; फूल की तरह नहीं, विद्युत् की रेखा के समान, न्यूरेलजिया की व्यथा के समान; कोणदार गाथिक गिरजे के ढंग की, मन्दिर के मण्डप के ढंग की नहीं; यहां तक कि यदि पुतली-घर, जूट-मिल या सेक्रेटरियट (सचिवालय—सरकारी दफ्तर) बिल्डिंग के ढांचे की हो तो भी हर्ज नहीं।...आज से फेंक दो मन को भ्रमित करने-वाली छलिनी छन्दोबद्धता को। मन को उससे छीन लेना होगा, हटा लेना होगा जैसे रावण सीता को छीन ले गया था। मन यदि रोते-रोते एतराज़ करते-करते जाए, तब भी उसे जाना ही होगा—अतिवृद्ध जटायु उसे रोकने आएगा और ऐसा करने से ही उसकी मृत्यु होगी। उसके बाद कुछ दिन बीतते ही किष्किंधा जाग उठेगी; कोई हनुमान एकाएक कूदकर

१. मतलब सूक्ष्मता या बारीकी से है। रवीन्द्रनाथ के हस्ताक्षर की रेखाएं गोल होती थीं।

लंका में आग लगा देगा और मन को पूर्व-स्थान में लौटा लाने की व्यवस्था करेगा। तव फिर टेनीसन[1] के साथ हमारा पुनर्मिलन होगा, वायरन[2] के गले लगकर हम आंसू वहाएंगे, और डिकेंस[3] से कहेंगे—'माफ करो, मोह से, अज्ञान से छूटने के लिए ही तुम्हें गालियां दी थीं।'…मुगल वादशाहों के युग से लेकर आज तक देश के सव मुग्ध मिस्त्री मिलकर यदि भारत-भर में जहां-तहां गुम्वददार-पत्थर के वुदवुद ही वनाते जाते तो समस्त भद्रलोक वीस साल की उम्र प्राप्त करते ही वानप्रस्थ धारण करने में देर न करते। ताजमहल के अच्छा लगने के लिए ही ताजमहल का नशा छुड़ा देने की आवश्यकता है।"

[यहां इतना वता देना आवश्यक है कि वात के वेग को न संभाल सकने के कारण सभा के रिपोर्टर का सिर चकरा गया था और उसने जो रिपोर्ट लिखी थी, वह अमित की वक्तृता से भी अधिक दुर्वोध हो गई थी। उसीमें से कुछ टुकड़ों का उद्धार करके हमने उन्हें ऊपर सजा दिया है।]

ताजमहल की पुनरावृत्ति के प्रसंग में रवि ठाकुर के भक्त लाल मुंह से (क्रुद्ध होकर) वोल उठे, "अच्छी चीज़ जितनी अधिक हो उतनी ही अच्छा हैं।"

अमित ने कहा, "नहीं, वात इससे ठीक उलटी है। विधाता के राज्य में अच्छी चीज़ थोड़ी होने के कारण ही अच्छी लगती है। नहीं तो वह अपनी ही भीड़ की ठेलमठेल से सामान्य हो जाती।…जो सव कवि साठ-सत्तर वर्ष तक जीवित रहने में ज़रा भी लज्जित नहीं होते, वे अपने को सस्ता वनाकर अपने को ही दण्ड देते हैं। अन्तिम काल में अनुकरणकारियों का दल चारों ओर व्यूह वनाकर उन्हें ही मुंह चिढ़ाता है। तव उनकी रचनाओं का चरित्र नष्ट हो जाता है; पूर्व की रचनाओं में से चोरी करके वे वन जाती हैं 'रिसीवर्स आफ स्टोलन प्रापर्टी' (चुराई सम्पत्ति की प्राप्तिकर्त्री)। ऐसी स्थिति में लोक-हित के लिए पाठकों का कर्तव्य हो जाता है कि वे किसी तरह इन अतिप्रवीण कवियों को जीने ही न दें—मैं शरीर से जीने की वात नहीं कर रहा हूं, काव्य-रूप

१-२. अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि

३. अंग्रेजी भाषा का प्रसिद्ध लेखक जिसमें व्यंग्य का अच्छा पुट है।

से जीने की बात कह रहा हूं। उनकी परमायु लेकर जीते रहें प्रवीण अध्यापक, प्रवीण पालिटीशियन (राजनीतिज्ञ) और प्रवीण समालोचक।"

उस दिन का वक्ता बोल उठा, "क्या मैं जान सकता हूं कि आप किसे प्रेसीडेण्ट बनाना चाहते हैं? उसका नाम तो सामने रखिए।"

अमित चट बोल उठा, "निवारण चक्रवर्ती।"

सभा की अनेक कुर्सियों से विस्मित स्वर गूंज उठा, "निवारण चक्रवर्ती? वह कौन हैं?"

"आज के दिन जो इस प्रश्न का अंकुर-मात्र है, कल उसीमें आपके उत्तर का पौधा निकल आएगा।"

"इस बीच हमें उसका एक नमूना तो दीजिए।"

"तब सुनिए।" कहकर अमित ने अपनी पाकेट (जेब) में से, लम्बी कैम्बिस की जिल्दवाली कापी निकाली और उसे खोलकर पढ़ने लगा:

लाया हूं
अपरिचित का नाम
धरणी पर।
परिचित जनता की सरणी पर।
मैं आगन्तुक,
मैं जन-गणेश का प्रचण्ड कौतुक।
खोलो द्वार,
लाया हूं विधाता का संदेश-समाचार।
महाकालेश्वर
द्वारा भेजे आए हैं दुर्लक्ष्य अक्षर।
बोले, दुःसाहसी है कौन यहां,
मृत्यु की चुनौती का जो
दे सके दुरूह उत्तर।

सुना नहीं,
मूढ़ता की सेना
किये पथरोध।

व्यर्थ क्रोध
एवं हुंकार करती,
छाती पर आकर है गिरती।
तरंगों की निष्फलता
नित्य यथा
मरती है माथा धुन
तुंग शैल-तट पर,
आत्मघाती दंभ भर।

पुष्पमाला नहीं, मेरा रिक्त है वक्षतल,
नहीं आज वर्म है, नहीं अंगद और कुण्डल।
शून्य इस ललाट-पट्ट पर है,
अंकित गूढ़ विजय-टीका।
छिन्न कन्था दरिद्र-वेश
करूंगा निःशेष,
तुम्हारा यह भण्डार,
खोलो खोलो द्वार।
अकस्मात्
बढ़ाता हूं हाथ
जो देना हो दे दो अचिरात्।
वक्ष तव कम्पित है कम्पित है अर्गल
पृथ्वी टलमल।
भयवश आर्त करता है चीत्कार
दिगन्त करके विदार
"लौट आओ अभी से
रे दुर्दान्त दुरन्त भिखारि
तेरी कण्ठध्वनि
घूम-घूमकर
निशीथ निद्रा के वक्ष में
गिरती है अति पैनी क्षुरिका-सी।"

अस्त्र लाओ ।
झन-झन कर मेरे पंजर पर चलाओ ।
मृत्यु को मृत्यु मारे, अक्षय ये प्राण,
कर जाऊंगा इन्हें दान ।
शृंखलाएं जोड़कर
बांधो मुझे
खण्ड-खण्ड कर दूंगा एक क्षण में,
तेरी है मुक्ति रे मेरी ही मुक्ति में ।

शास्त्र लाओ ।
आओ, मारो मुझे आओ ।
पण्डित और पण्डित,
ऊंचे स्वरों से करते हैं खण्डित
दिव्य वाणी ।
जानता हूं,
तर्क-बाण
हो जाएंगे बेनिशान
मुक्त होंगे जीर्ण वाक्य-आच्छन्न लोचनद्वय,
देखेंगे ज्योति, दूर होगा तब तिमिर-भय ।

ज्वलित करो अग्नि अब ।
आज का भला है जो
कल भले हो कालिमामय
भले वह भस्म हो
विश्वमय
भस्म हो ।
दूर करो शोक हो,
मेरी अग्नि-परीक्षा में
धन्य हो विश्वलोक अपूर्व दीक्षा में ।

मेरी दुर्बोध वाणी,
विरुद्ध बुद्धि पर मुष्टिका है जिसने तानी
करेगी उसे उच्चकित,
आतंकित।
उन्मत्त मेरे छन्द,
देंगे खूब दंद-फंद
शान्तिलुब्ध मुमुक्षु को
भिक्षाजीर्ण बुभुक्षु को।
सिर पर हस्त-प्रहार
करो, लेंगे सब स्वीकार
क्रोध में, क्षोभ में, भय में,
लोकालय में
अपरिचित की हो जय,
अपरिचित का परिचय—
है मेरा वह अपरिचित ही
वैशाख का रुद्र वह आंधी और धूल से,
करता धरा को है आन्दोलित,
मेघ के कार्पण्य को
मुष्टिका-प्रहार से गुप्त जल-संचय
को छिन्न-भिन्न करके करता है मुक्त जगन्मय।

रवि ठाकुर का दल उस दिन चुप रह गया। हां, धमकी दे गया कि लिखकर इसका जवाब देगा।

सम्पूर्ण सभा को हतबुद्धि करके अमित जब मोटर में घर आ रहा था तब सिसी ने उससे कहा, "निश्चय ही पहले से गढ़कर एक निवारण चक्रवर्ती को तुम जेब में धर लाए थे, सिर्फ भलेमानुसों को मूर्ख बनाने के लिए।"

अमित ने कहा, "अनागत को जो मनुष्य आगे ले आता है उसे ही अनागत-विधाता कहते हैं। मैं वही हूं। निवारण चक्रवर्ती आज मृत्युलोक में उतर आया है। अब उसे कोई रोक नहीं सकता।"

सिसी अमित के लिए मन ही मन में एक प्रकार का गर्व अनुभव करती है। वह बोली, "अच्छा अमित ! तुम क्या सुवह उठते ही उस दिन कही जानेवाली वातों को तेज़ करके रख लेते हो ?"

अमित ने कहा, "संभावना के लिए हर समय प्रस्तुत रहने का नाम ही सभ्यता है; वर्वरता पृथ्वी के सभी विषयों में अप्रस्तुत रहती है। यह वात भी हमारी नोटवुक में लिखी हुई है।"

"किन्तु तुम्हारे पास तुम्हारी अपनी राय जैसी कोई चीज़ नहीं है। जव जो वात खूव अच्छी सुनाई पड़े, वस उसीको तुम कह देते हो।"

"मेरा मन आईना है। अपने ही वंधे मतों से यदि मैं उसे सदैव के लिए लीप-पोतकर रख देता तो फिर उसपर प्रत्येक चलायमान क्षण का प्रतिविम्व न पड़ता।"

सिसी ने कहा, "अमी, प्रतिविम्व लिए-लिए ही तुम्हारा जीवन वीत जाएगा।"

२

संघात

वहुत सोच-विचार के वाद अमित शिलांग गया। कारण यह था कि वहां उसके दल का कोई नहीं जाता। एक और भी कारण यह था कि वहां कन्यावालों की वन्या—वाढ़—उतनी प्रखर नहीं। अमित के हृदय पर जो देवता सदा वाण चलाते रहते हैं उनका आना-जाना फैशनेवल क्षेत्र में ही होता है। देश के पहाड़-पर्वतों पर जितनी भी विलासी वस्तियां हैं, उनमें से शिलांग उनकी निशानेवाज़ी के लिए सवसे संकीर्ण स्थान है। जाते समय उसकी वहिनों ने भी सिर हिलाकर कह दिया, "जाते हो तो अकेले चले जाओ; हम लोग नहीं जाएंगी।"

वायें हाथ में हाल-शैली की छोटी छतरी, दाहिने हाथ में टेनिस-वैट, शरीर पर नकली फारसी शाल का क्लोक (लवादा) पहनकर वहिनें दार्जिलिंग चली गईं। विमि वोस पहले से ही वहां जा चुकी थी। जव भाईरहित वहिनें वहां पहुंचीं तो उसने चतुर्दिक दृष्टि डालने के वाद

यह बात खोज निकाली कि 'दार्जिलिंग में जनता है, मनुष्य नहीं हैं।'

अमित सभीसे कह गया था कि वह निर्जनता का स्वाद लेने के लिए ही शिलांग जा रहा है। पर दो दिन भी बीतने न पाए थे कि वह समझ गया कि जनता के न होने पर निर्जनता का स्वाद भी मारा जाता है। कैमरा हाथ में लेकर दृश्य देखते फिरने का शौक अमित को है नहीं। वह कहता है, "मैं टूरिस्ट (यात्री) तो हूं नहीं, मन से चखकर खानेवाला हूं मैं, आंखों से निगलकर खाने की आदत नहीं है मेरी।"

कुछ दिन तो उसने पहाड़ की ढाल पर देवदारु वृक्षों की छाया तले बैठकर पुस्तकें पढ़ने में काट दिए। कहानियों की पुस्तकें छुईं भी नहीं क्योंकि छुट्टी में गल्पों—कहानियों—की पुस्तकें पढ़ना साधारण आदमियों का दस्तूर है। वह सुनीति चाटुर्ज्या की पुस्तक 'बंगला भाषा का शब्दतत्त्व' मन में यह आशा लेकर पढ़ने लगा कि लेखक के साथ उसका मतभेद तो होगा ही। किन्तु उसके शब्दतत्त्व एवं आलस्य-जड़ता की सांध में से वहां के पर्वतों और वनों की सुन्दर झलक दिखाई पड़ जाती, यद्यपि उसके मन पर पूर्णतः सघन होकर वे छा नहीं पाते, जैसे वे किसी रागिनी के एकरस आलाप के समान हों, जिसमें ध्रुव—स्थायी—नहीं, ताल नहीं, सम नहीं। अर्थात् उनमें विस्तार तो है पर एकत्व नहीं—एक ढीली-ढाली वस्तु जो बिखर-बिखर जाती है, संचित नहीं हो पाती। अमित अपने निखिल के अन्दर एकत्व के इस अभाव के कारण रह-रहकर चंचलता से विक्षिप्त हो जाता है। उसका यह दुःख जैसे यहां है, वैसे ही शहर में भी बना रहता है। किन्तु शहर में वह इस चंचलता को नाना प्रकार से नष्ट कर डालता है; इस स्थान पर चंचलता स्थिर हो-होकर घनीभूत हो जाती है, जैसे झरना बाधा पाकर सरोवर बन जाता है। इसीलिए जब वह सोच रहा था कि पहाड़ से उतरकर सिलहट-सिल्चर के अन्दर से होता हुआ पैदल अन्यत्र चल दूं, तभी पहाड़ों-पहाड़ों, वनों-वनों में अपनी सजल सघन छाया की चादर फैलाता हुआ आषाढ़ आ पहुंचा। समाचार मिला कि चेरापूंजी की गिरिमाला ने नव-वर्षा के मेघदलों के पुंजीभूत आक्रमण को अपनी छाती पर झेल लिया है; अब यह घनवर्षण पहाड़ी सोतों को तटहीन करके ही छोड़ेगा। उसने स्थिर किया कि ऐसे समय में कुछ दिन के लिए चेरापूंजी के डाकबंगले

में ऐसा मेघदूत अवतरित कर देगा जिसकी अलक्ष्य अलकापुरी की नायिका अशरीरी विद्युत् जैसी होगी, जो उसके चित्त रूपी आकाश में क्षण-क्षण पर चमक उठा करेगी, पर न अपना नाम ही लिखेगी, न अपना ठिकाना ही बतला जाएगी।

बस, उस दिन उसने पहने हाईलैण्डरों के मोटे कम्बली मोज़े, मज़बूत चमड़े के जूते, खाकी नार्फाक कुर्ता, घुटनों तक छोटा अधोवसन, और सिर पर सोला-हैट। देखने में अवनी ठाकुर द्वारा अंकित यक्ष जैसा तो नहीं हुआ पर ऐसा ज़रूर लगा मानो सड़क की जांच करनेवाला कोई डिस्ट्रिक्ट इंजीनियर हो। किन्तु पाकेट में रख लीं कई भाषाओं की पाकेट एडीशन की काव्य-पुस्तकें।

टेढ़ा-मेढ़ा पतला रास्ता है; दाहिने हाथ जंगल से ढका हुआ खण्ड है। इस रास्ते के बिलकुल अखीर में है अमित का निवासस्थान। वहां यात्रियों के आने की संभावना नहीं, इसलिए वह बिना आवाज़ दिए असावधानी के साथ गाड़ी लिए चला जा रहा था। मन में सोच रहा था कि आधुनिक काल की दूरवर्तिनी प्रेयसी के लिए मोटर-दूत ही प्रशस्त है। उसमें 'धूमज्योतिःसलिलमरुतां सन्निवेशः'[1] पर्याप्त और उचित परिमाण में है और चालक के हाथ में एक चिट्ठी दे देने पर तो कुछ भी अस्पष्ट नहीं रह जाता। बस, उसने निश्चय कर लिया कि अगले साल 'आषाढ़स्य प्रथम दिवसे'[2] ही वह मेघदूत-वर्णित रास्ते से मोटर पर यात्रा करेगा। क्योंकि हो सकता है कि अदृष्ट ने उसकी बाट जोहते हुए 'देहली-दत्तपुष्पा'[3] जिस पथिक-वधू को इतने दिनों से बिठा रखा है वह अवन्तिका हो या मालविका हो, अथवा हिमालय की कोई देवदारुवनचारिणी ही हो, किसी अचिन्त्य उपलक्ष्य से दिखाई दे जाए।—यह सब सोचता गाड़ी चलाए जा रहा था कि एकाएक एक मोड़ पर पहुंचते ही उसने देखा कि एक और गाड़ी ऊपर चली आ रही है और गाड़ी काटकर निकालने की जगह नहीं है। बस, ब्रेक कसते-कसते भी गाड़ी जा पड़ी दूसरी गाड़ी पर—दोनों को आघात लगा किन्तु अपघात नहीं हुआ। दूसरी गाड़ी

---

१. धुएं, आग, पानी और हवा का मेल २. आषाढ़ मास के पहले दिन
३. देहली पर पुष्प रखे हुए

सड़क से ज़रा हटकर पहाड़ से अटककर रुक गई।

एक स्त्री गाड़ी से उतरकर सड़क पर आ खड़ी हुई। सद्यःमृत्यु की आशंका का काला पर्दा उसके पीछे था किन्तु उसीके ऊपर वह एक विद्युत्-रेखा से अंकित सुस्पष्ट छवि के समान खिल उठी थी—चारों ओर के समस्त से बिलकुल स्वतन्त्र, निराली मानो मन्दराचल से विलोड़ित-मथित फेनिल हो उठे समुद्र से अभी उठकर चली आई हुई लक्ष्मी हो, समस्त आन्दोलनों के ऊपर, जैसे महासागर की छाती अभी तक फूल-फूलकर कांप रही हो। इस दुर्लभ अवसर पर अमित ने उसकी ओर देखा। ड्राइंगरूम में यह किशोरी अन्य पांच जनों के बीच अपने पूरे आत्मरूप में न दिखाई देती। पृथ्वी पर देखने योग्य आदमी तो मिल भी जाता है किन्तु उसे देखने योग्य ठीक जगह नहीं दिखाई पड़ती।

किशोरी पतली किनारी की सफेद अलवान की साड़ी और उसी अलवान की ज़ाकेट पहने हुए थी। पांव में थीं सफेद चमड़े की देशी ढंग की जूतियां। बदन लम्बा छरहरा, रंग चिकना श्यामल, आंखें खिची लम्बी, बरौनियों की घनी छाया में निविड़ स्निग्ध, प्रशस्त ललाट को मुक्त रखे हुए पीछे की ओर कसकर बंधा हुआ जूड़ा। चिबुक को घेरे हुए सुकुमार मुख की गढ़न एक अनतिपक्व फल की भांति रमणीय थी। जाकेट की बांहें कलाई तक लम्बी, दोनों हाथों में दो पतले सादे कड़े। ब्रोच के बन्धन से हीन कंधे का पल्ला सिर पर उठकर कटक की कामदार चांदी के कांटे से जूड़े के साथ बंधा हुआ था।

अमित ने टोपी उतारकर गाड़ी में रख दी और बाहर आकर किशोरी के सामने चुपचाप खड़ा हो गया जैसे दी जानेवाली सज़ा की प्रतीक्षा कर रहा हो। जान पड़ता था कि उसकी दशा देखकर किशोरी को दया आ गई, और कुछ कुतूहल भी हुआ। अमित ने मृदु स्वर में कहा, "मैंने अपराध किया है।"

किशोरी ने हंसकर कहा, "अपराध नहीं, भूल। और उस भूल का आरम्भ मुझसे ही हुआ है।"

झरने के जल जैसे उत्साह जैसा सुडौल था किशोरी का कण्ठ-स्वर। अल्पवयस बालक के गले के समान मुलायम और प्रशस्त। उस दिन घर लौटने के बाद भी बहुत देर तक अमित सोचता रहा कि उसके गले के

सुर में जो एक स्वाद है, एक स्पर्श है, उसका वर्णन कैसे किया जा सकता है? नोटबुक खोलकर उसने लिखा—"जैसे वह अम्बरी तम्बाकू का हलका धुआं हो, पानी के भीतर से घूमता हुआ आ रहा हो, जिसमें निकोटिन की उग्रता नहीं, गुलावजल की स्निग्ध गंध हो।"

किशोरी ने अपनी भूल की व्याख्या करते हुए कहा, "एक मित्र के आने का समाचार पाकर मैं उन्हें खोजने निकली थी। इस रास्ते से कुछ ऊपर जाते ही शोफर ने कहा कि 'यह रास्ता नहीं हो सकता।' किन्तु तब अन्त तक गए बिना लौटने का कोई उपाय न था, इसीलिए ऊपर आ रही थी। इतने में ही ऊपरवाले का धक्का खाना पड़ा।"

अमित बोला, "ऊपरवाले के ऊपर भी ऊपरवाला है—एक अत्यन्त कुश्री कुटिल ग्रह। यह उसीकी करतूत है।"

दूसरे पक्ष के ड्राइवर ने बताया, "नुकसान ज़्यादा नहीं हुआ, किन्तु गाड़ी को ठीक करने में देर लगेगी।"

अमित ने कहा, "मेरी अपराधिनी गाड़ी को यदि क्षमा कर दें, तो यह आपको, जहां अनुमति देंगी वहीं पहुंचा दे सकती है।"

"इसकी ज़रूरत नहीं होगी; पहाड़ पर पैदल चलने का अभ्यास मुझे है।"

"ज़रूरत तो मुझे है, आपने माफ कर दिया इसका प्रमाण वही है।"

किशोरी कुछ दुविधा में पड़कर चुप रह गई। अमित ने कहा, "मेरी ओर से और भी एक बात है। गाड़ी चलाना कोई खास बड़ा काम नहीं है। गाड़ी से चलकर कोई पास्चैरिटी तक नहीं पहुंच सकता। फिर भी आरम्भ में आपने मेरा परिचय इसी रूप में पाया है। और उसपर भी मेरा भाग्य कि यहां भी गलती हो गई। उपसंहार में मुझे इतना तो दिखा देने का अवसर दीजिए कि जगत् में मैं आपके शोफर से तो अयोग्य नहीं।"

अपरिचित के साथ प्रथम परिचय में अज्ञात विपत्ति की आशंका से स्त्रियां अपना संकोच दूर नहीं करना चाहतीं, किन्तु विपद के एक ही धक्के से अनुक्रमणिका की विस्तृत दीवार एकदम ही टूट गई, मानो दैव ने निर्जन पहाड़ी पथ के बीच हठात् इन्हें खड़ा करके दोनों के मन में

देखा-देखी की गांठ-वांध दी; सब्र नहीं किया। इस आकस्मिक विद्युत्-प्रकाश में जो कुछ आंखों को दिखाई पड़ा वह रात को वीच-वीच में जगने पर अन्धकार के पट पर भी दिखाई देता रहेगा। उसके चैतन्य पर गंभीर छाप पड़ गई, जैसे नील आकाश के ऊपर सृष्टि के किसी एक प्रचण्ड धक्के से सूर्य-नक्षत्र की अग्निज्वलित छाप लग जाती है।

मुंह से कुछ न कहकर किशोरी गाड़ी में वैठ गई। उसके निर्देश के अनुसार गाड़ी ठीक स्थान पर जा पहुंची। किशोरी ने गाड़ी से नीचे उतरकर कहा, "कल यदि आपके पास समय हो तो कृपया इस जगह आइएगा। अपनी स्वामिनी मां के साथ आपकी वातचीत करा दूंगी।"

अमित की इच्छा हुई कि कह दे, 'मुझे समय का अभाव नहीं है, अभी आ सकता हूं।' परन्तु संकोच के कारण वोल नहीं सका।

घर लौटकर वह नोटवुक निकालकर लिखने लगा—"रास्ते ने आज एकाएक कैसा पागलपन कर डाला। दो प्राणियों को दो जगह से तोड़ लाकर आज एक ही रास्ते पर उनका चालान कर दिया। एस्ट्रोनोमर (ज्योतिषी) ने गलत कहा है। अज्ञात आकाश से चांद पृथ्वी की खिड़की में—उनकी मोटरों में धक्का लगा। मरण की उस ताड़ना के वाद से दोनों युग-युग में एकसाथ चल रहे हैं। इसकी ज्योति उसके मुंह पर पड़ती है और उसकी ज्योति इसके मुख पर। चलने का वंधन अव छूटता नहीं। मन के भीतर से कोई कह रहा है—हमारा युगल चलन शुरू हो गया है। अव चलने के सूत्र में क्षण-क्षण में गिरे पाए उज्ज्वल निमेषों की माला गूंथा करेंगे। अव वंधे मासिक वेतन की वंधी हुई खोराकी के सहारे भाग्य के द्वार पर पड़े रहने की जगह नहीं रही। अव हमारा देना-पावना सव आकस्मिक हुआ करेगा।"

वाहर वर्षा हो रही है। वरामदे में ज़ोरों से चहलकदमी करते हुए अमित मन में कह रहा है, 'कहां हो निवारण चक्रवर्ती? आओ, हमारे ऊपर, मुझे वाणी दो, वाणी दो।'

अपनी लम्वी पतली कापी निकाल ली। निवारण चक्रवर्ती वोलने लगा:

पथ ने है वांध दिया वन्धनहीन ग्रन्थि से,
दोनों साथ चल रहे हवा के पंथि से।

धूलि के दुलारे ये जो रंग-भरे क्षण हैं,
प्राणों में गुलाल छोड़ जाते कण-कण हैं।
पावस के मेघों में उड़ाती निज आंचल है,
मुग्धा दिगंगना वह करती नृत्य चंचल है।
उसकी हठात् ज्योति विद्युत्-सी दमकती,
चित्त को है मेरे चकाचौंध आज करती।
कनक-चंपा के कुंज कहीं तो न दिखते हैं,
वकुल-पुंज वन-वीथिका में न खिलते हैं।
फिर भी हठात् उस संध्या में रंग-भरे,
आ गई थी कलिका-अनामिका-सी गंध धरे।
तरु शाखा शिखरों पर राडोडेंडन के गुच्छ हैं,
करते प्रभातारुण मेघों को तुच्छ हैं।
मेरे पास नहीं है धनरत्नों का संचय,
कभी न पाया घर में लाड़-प्यार का परिचय।
पथ-सन्निकट मंजु वह पंछी पूंछ नचाता,
करो न वंद उसे वंधन है किसको भाता!
पंख अपना वह पसारे मुक्ति-प्रिय के गान,
गा रहा है, तृप्त हैं हम युगलजन के प्राण।
इस अचिन्त्य सुयोग पर पुलकित चकित मन-प्राण,
क्वचित-किरण-प्रदीप्त मुख वह देखता अम्लान।

इस जगह एक वार पीछे लौटना ज़रूरी है। पीछे की वातें पूरी कर लेने पर आगे वढ़ने में कोई वाधा न होगी।

३

पूर्वभूमिका

वंगाल में अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रथम पर्याय में चण्डीमण्डप की हवा के साथ स्कूल-कालेज की हवा का जो वैपम्य दिखाई दिया उसने समाज-विद्रोह का एक तूफान-सा उठ खड़ा हुआ। इस तूफान के चंगुल में फंस

गए ज्ञानदाशंकर। वे आदमी तो उसी (पुराने) युग के थे किन्तु उनकी तारीख़ एकाएक फिसलकर इस ज़माने में आ पड़ी थी। वे अपने समय से पहले उत्पन्न हुए थे। बुद्धि, बातचीत और व्यवहार में वे अपनी उम्र के लोगों के समय के नहीं लगते थे। समुद्र-तरंग-विलासी पक्षी के समान लोकनिन्दा के थपेड़े को अपनी छाती पर झेल लेने में उन्हें आनन्द मिलता था।

इस प्रकार के सभी पितामहों के नाती-गण जब इस तिथि-विपर्यय का संशोधन करने की चेष्टा करते हैं तो वे एक ही दौड़ में पंजिका—पत्रा—के उलटे टर्मिनस पर पहुंच जाते हैं। इस क्षेत्र में भी वही हुआ। ज्ञानदाशंकर के नाती वरदाशंकर, अपने बाप की मृत्यु के बाद, युग के हिसाब से, बाप-दादा के आदिम पूर्वज के समान हो उठे। वे मनसादेवी के भी हाथ जोड़ते और शीतला को भी 'मां' कहकर शान्त रखना चाहते। ताबीज़ धोकर उसका पानी पीना भी शुरू कर दिया; दुर्गा का सहस्र नाम लिखने में दिन का पूर्वाह्ण बीत जाता। उनके इलाके में जो वैश्य-दल अपना द्विजत्व प्रमाणित करने के लिए सिर हिलाकर उठ खड़ा हुआ था, उसे भी भीतर-बाहर सब तरफ से विचलित कर दिया गया; हिंदुत्व-रक्षा के उपायों को विज्ञान की छूत से बचाने के लिए भाटपाड़ा (के पण्डितों) की सहायता से असंख्य पैम्फलेट छापकर आधुनिक बुद्धि की खोपड़ी पर बिना मूल्य ऋषिवाक्यों की वर्षा करने में भी उन्होंने कोई कृपणता नहीं दिखाई। बहुत थोड़े समय में ही उन्होंने क्रिया-कर्म, जप-तप, आसन-आचमन, ध्यान-स्नान, धूप-धूना, गो-ब्राह्मण-सेवा तथा शुद्धाचरण का अचल और निश्छिद्र किला अपने चारों ओर बनाकर खड़ा कर दिया। अन्त में गोदान, स्वर्णदान, भूमिदान, कन्यादाय-पितृदाय-मातृदाय-हरण आदि के बदले असंख्य ब्राह्मणों का अजस्र आशीर्वाद वहन करते हुए जब वे परलोक को सिधारे, तब उनकी उम्र केवल सत्ताईस साल की थी।

उनके पिता के परम मित्र और उन्हींके साथ एक कालेज में पढ़े हुए, एक ही होटल में चाप-कटलेट खानेवाले रामलोचन बनर्जी की कन्या योगमाया के साथ वरदा का विवाह हुआ था। उस समय योगमाया के पितृकुल के साथ पतिकुल का व्यवहारगत वर्ण-भेद नहीं था।

अब तो उसके बाप के घर की लड़कियां पढ़ती-लिखती हैं, बाहर भी निकलती हैं, यहां तक कि उनमें से किसी-किसीने मासिक पत्र में अपना भ्रमण-वृत्तान्त भी लिखा है। ऐसे घर की लड़की के पवित्र संस्कार में अनुस्वार-विसर्ग की भी भूल-चूक न रह जाए, ऐसी चेष्टा में उसके पति-देव लग गए। सनातन सीमान्त-रक्षानीति के अटल शासन से योगमाया की गति-विधि विविध पासपोर्ट-प्रणाली द्वारा नियंत्रित की जाने लगी (अर्थात् बाहर आने-जाने के लिए आज्ञा लेनी पड़ती थी)। उनका घूंघट आंखों के ऊपर तक आ गया, बल्कि वह मन के ऊपर भी फैल गया। देवी सरस्वती यदि कभी किसी अवकाश में इनके अन्तःपुर में प्रवेश करतीं तो उन्हें भी पहरे पर जामा-तलाशी दे देनी पड़ती और उनके हाथों में यदि अंग्रेज़ी की पुस्तकें होतींतो वे सब बाहर ही ज़ब्त कर ली जातीं। प्राक्-बंकिम बंगला साहित्य की परवर्ती रचनाएं पकड़ी जाने पर चौखट पार न करने पाती थीं। योग-वाशिष्ठ एवं रामायण के बढ़िया जिल्द-वाले बंगला अनुवाद योगमाया के शेल्फ (आलमारी) में पड़े न जाने किस ज़माने से प्रतीक्षा कर रहे हैं। अवसर पर विनोद के लिए कभी न कभी इस विषय का अध्ययन गृह-स्वामिनी करेंगी, ऐसा एक आग्रह इस घर के अधिकारियों के मन में अन्त काल तक बना रहा। उस पौराणिक लोहे के सन्दूक के अन्दर अपने को सेफ डिपाज़िट की तरह रख देना योगमाया के लिए सरल नहीं था, फिर भी अपने विद्रोही मन को उन्होंने शासन में रखा। इस मानसिक अवरोध के बीच उनके एकमात्र आश्रय थे दीन-शरण वेदान्तरत्न, इन लोगों के सभापण्डित। योगमाया की स्वाभाविक स्वच्छ बुद्धि उन्हें बड़ी अच्छी लगती थी। वे स्पष्ट ही कहा करते थे, "यह समस्त क्रिया-कर्म का जंजाल तुम्हारे लिए नहीं है। जो लोग मूढ़ हैं, वे केवल अपने-आपको ही नहीं ठगते, पृथ्वी का सब कुछ उन्हें ठगता रहता है। तुम क्या समझती हो कि हम इन सब बातों में विश्वास करते हैं? क्या तुम देखती नहीं कि आवश्यकता पड़ने पर हम लोग शास्त्र को व्याकरण के दांव-पेंच से उलटने में दुःखी नहीं होते? इसका मतलब यह है कि मन के भीतर हम बंधन नहीं मानते पर बाहर मूढ़ों के लिए मूढ़ता को सजाना पड़ता है। जब तुम स्वयं अपने को भूलना नहीं चाहतीं, अपने को भ्रमित करना नहीं चाहतीं, तो तुम्हें भ्रम में डालने का कार्य

हमारे द्वारा कैसे हो सकता है ? बेटी, जब भी इच्छा हो मुझे बुलवा लेना, मैं जिसे सत्य मानता-जानता हूं उसे तुम्हें शास्त्रों में से निकाल-कर सुना जाया करूंगा।"

किसी-किसी दिन आकर वे योगमाया को कभी गीता, कभी ब्रह्म-भाष्य में से व्याख्या करके समझा जाया करते। योगमाया उनसे बुद्धि-पूर्वक ऐसे-ऐसे प्रश्न करती कि वेदान्तरत्न महाशय पुलकित हो उठते और उसके निकट व्याख्या करने में उनके उत्साह की कोई सीमा न रहती। वरदाशंकर ने योगमाया के चारों ओर छोटे-बड़े जितने भी गुरु और गुरुतरों को एकत्र कर रखा था उनके प्रति वेदान्तरत्न महाशय बड़ी अवज्ञा की भावना रखते थे; वे योगमाया से कहा करते थे, "बेटी, सारे शहर में एक तुम्हारे ही घर कथा कहने, बातचीत करने में मुझे सुख मिलता है। तुमने मुझे आत्मधिक्कार से बचा लिया है।"

इस तरह निरवकाश व्रत-उपवास के बीच पत्रे की सांकल में बंधे हुए दिन किसी प्रकार कट गए। आजकल के समाचार की भाषा में जिसे 'बाध्यतामूलक' कहा जाता है वैसा ही उनका सारा जीवन हो उठा। स्वामी की मृत्यु के बाद ही योगमाया अपने लड़के यतिशंकर और लड़की सरमा को लेकर बाहर निकलीं। अब तो वे शीतकाल में कल-कत्ता और गर्मी में किसी पहाड़ पर जाकर रहती हैं। यतिशंकर अब कालेज में पढ़ रहा है; किन्तु सरमा के पढ़ाने लायक कोई विद्यालय पसन्द न आने के कारण बड़ी खोज-बीन के बाद उसकी शिक्षा के लिए उन्हें लावण्यलता मिल गई है। इसी लावण्य के साथ आज सवेरे अचा-नक अमित की भेंट हो गई।

४

लावण्य-पुरावृत्त

लावण्य के पिता अवनीशदत्त पश्चिम की ओर किसी कालेज के प्रधान थे। उन्होंने मातृहीन कन्या का पालन-पोषण इस प्रकार किया था कि अनेक परीक्षाएं पास करने की भाग-दौड़ के बीच भी उसकी

विद्यावुद्धि को किसी प्रकार का नुकसान नहीं पहुंचा। यहां तक कि अब तक पढ़ने के प्रति उसका प्रवल अनुराग है।

वाप को एकमात्र शौक था विद्या का। कन्या में उस शौक की पूर्ण परितृप्ति हो गई थी। वे अपनी कन्या को अपनी लाइब्रेरी से भी अधिक प्यार करते थे। उनका विश्वास था कि ज्ञान की चर्चा से मन ठोस हो जाता है और नीचे से उठनेवाली चिन्ता की गैस समस्त दरारें भर जाने के कारण ऊपर नहीं उठ पाती। ऐसे आदमी को व्याह करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। उनका यह भी दृढ़ विश्वास था कि उनकी कन्या के मन में पति-सेवा की भावना वसाने योग्य जो नरम मिट्टी वाकी रह सकती थी, वह गणित और इतिहास की सीमेण्ट से पक्की हो गई है और जिसका मन खूव मज़वूत और पक्का हो गया है उसके लिए यह कहा जा सकता है कि वाहर की खोंच-खरोंच लगने से उसपर कोई दाग नहीं पड़ सकता। वे तो यहां तक सोच चुके थे कि लावण्य का विवाह न हुआ तो क्या, पाण्डित्य के साथ ही उसका सदा के लिए गठ-वन्धन तो हो ही चुका है।

उनके स्नेह का एक और पात्र था। उसका नाम था शोभनलाल। छोटी उम्र में पढ़ने-लिखने के प्रति इतना मनोयोग और किसीमें दिखाई नहीं देता। चौड़ा माथा, आंखों में भावों की स्वच्छता, होंठों पर भावना का सौजन्य, हंसी में सरलता, मुख पर सुकुमारता ऐसी है कि उसका चेहरा देखते ही मन उसकी ओर खिचता है। वेचारा वड़ा मुंहचोर है, उसकी ओर ज़रा भी ध्यान देते ही वह परेशान-सा हो जाता है।

गरीव का यह लड़का छात्रवृत्ति की सीढ़ियों से दुर्गम परीक्षा की चोटियों को पार करता हुआ चल रहा है। भविष्य में शोभन जो नाम कमाएगा, उस नामवरी या यश का निर्माण करनेवाले कारीगरों की सूची में अवनीश का नाम सवके ऊपर रहेगा, इस वात का अभिमान प्रिंसिपल के मन में था। शोभन उनके घर पढ़ने आया करता था; उनकी लाइब्रेरी में विना किसी रुकावट के वह जव चाहे आ-जा सकता था। लावण्य को देखकर वह मारे संकोच के सिर झुका लेता था। इस संकोच के अतिदूरत्व के कारण ही अपने-आपको शोभनलाल से वड़ा अनुभव करने में लावण्य के लिए कोई वाधा न थी। जो पुरुष दुविधावश यथेष्ट

ज़ोर के साथ अपने को स्पष्ट नहीं कर सकता, स्त्रियां उसे स्वयं यथेष्ट स्पष्टता के साथ प्रत्यक्ष नहीं करतीं।

ऐसे ही समय एक दिन शोभनलाल का बाप ननिगोपाल अवनीश के घर आ धमका और उन्हें जली-कटी सुना गया। उसकी शिकायत थी कि 'अवनीश ने अपने घर में पढ़ाने के बहाने ब्याह के लिए लड़के को जाल में फांस रखा है और वैद्य[1] के लड़के शोभनलाल की जाति नष्ट कर समाज-सुधार का शौक पूरा करना चाहते हैं।' इस अभियोग के प्रमाण में उसने लावण्य का एक पेंसिल-स्केच पेश किया जो शोभनलाल के टिन के ट्रंक के अन्दर से मिला था और जिसपर वहां गुलाब की पंखुरियां बिछाई गई थीं। ननिगोपाल को इसमें सन्देह नहीं था कि यह तस्वीर लावण्य की ओर से प्रणयदानस्वरूप लड़के को मिली है। पात्रता के विचार से विवाह के बाज़ार में शोभनलाल की दर कितनी ऊंची है और कुछ दिन और सब्र करने से वह दर कितनी बढ़ जाएगी, ननिगोपाल की हिसाबी बुद्धि में यह बात जुड़ी-जुड़ाई रखी थी। ऐसी मूल्यवान चीज़ को मुफ्त ही हथियाने के लिए अवनीश फन्दा डाल रहे हैं, इसे सेंध लगाकर चोरी करने के सिवा और क्या नाम दिया जा सकता है? धन की चोरी और इस चोरी में लेश-मात्र भी अन्तर कहां है?

इतने दिन लावण्य को पता ही न था कि श्रद्धाहीन लोकदृष्टि से दूर किसी छिपी वेदी पर उसकी मूर्ति की पूजा चल रही है। अवनीश की लाइब्रेरी के एक कोने में बहुत-से पैम्फलेट और पत्रिकाओं का ढेर लगा था जिसमें असावधानी के कारण मलिन पड़ रहा लावण्य का एक फोटोग्राफ़, संयोगवश, शोभनलाल को मिल गया था; अपने किसी चित्रकार मित्र द्वारा इस फोटो से उसने एक चित्र बनवा लिया और उस फोटोग्राफ को फिर यथास्थान रख दिया था; और गुलाब के फूल भी उसके तरुण मन के लज्जापूर्ण छिपे प्रेम की भांति ही खिले थे किसी मित्र के बगीचे में। इस घटना में किसी अनधिकार या उद्धतता की कोई बात नहीं थी। फिर भी दण्ड उसे ही मिला। लजाधुर लड़का सिर झुकाए, मुंह लाल किए, छिपाकर अपनी आंखों से आंसू पोंछता हुआ इस घर से

---

१. बंगाल की एक जाति

विदा हो गया। दूर से उसने अपने आत्मनिवेदन का एक अन्तिम परिचय दिया, किन्तु उसका हाल सिवा अन्तर्यामी के और कोई जान न सका। जब बी० ए० की परीक्षा में उसे प्रथम स्थान मिला, तब लावण्य तीसरा स्थान पा सकी। इससे लावण्य को अपनी लघुता का, अपनी हीनता का बड़ा दुःख हुआ। इसके दो कारण थे। एक तो यह था कि शोभन की बुद्धि पर अवनीश को जो श्रद्धा थी उससे प्रायः लावण्य को चोट लगती थी। इस श्रद्धा के साथ लड़के के प्रति अवनीश का विशेष स्नेह घुल-मिल जाने के कारण वह पीड़ा और बढ़ गई थी। परीक्षाफल में शोभन को हरा देने के लिए उसने बड़े प्राणपण से चेष्टा की थी, फिर भी शोभन जब उससे आगे निकल गया तो उस स्पर्धा के लिए उसको क्षमा करना लावण्य के लिए कठिन हो गया। उसके मन में कुछ ऐसा सन्देह हो गया कि पिता ने उसकी जो विशेष सहायता की उसीके कारण परीक्षाफल में इस प्रकार की विषमता संभव हुई है। आश्चर्य यह कि परीक्षा की पढ़ाई के सम्बन्ध में शोभनलाल किसी दिन अवनीश के सामने नहीं गया। कुछ दिनों तक तो यह हाल रहा कि शोभनलाल को देखते ही लावण्य मुंह फिराकर वहां से चली जाती थी। एम० ए० की परीक्षा में भी लावण्य के लिए शोभनलाल से जीतने की कोई संभावना न थी। तब भी जीत उसीकी हुई। स्वयं अवनीश भी चकित रह गए। शोभनलाल यदि कवि होता तो अपनी कापियां कविता से भर देता, किन्तु कवि न होने के कारण कविता के बदले उसने अपनी परीक्षा के उत्तीर्णांकों के कितने ही फूल लावण्य के लिए उत्सर्ग कर दिए।

इसके बाद तो दोनों की पढ़ाई ही समाप्त हो गई। ऐसे समय अवनीश को अपनी गहरी बीमारी में स्वयं ही इस बात का प्रमाण मिल गया कि ज्ञान की चर्चा से मन ठोस हो जाने पर भी न जाने कहां से मनसिज सब कुछ ठेलकर आ जाता है; इसके लिए उसे स्थान की कोई कमी नहीं होती। उस समय अवनीश सैंतालीस के थे। उस नितान्त दुर्बल निरुपाय वयस में उनकी लाइब्रेरी के ग्रन्थ-व्यूह को भेदकर और उनके पांडित्य की चहारदीवारी को गिराकर एक विधवा ने उनके हृदय में प्रवेश पा लिया। उसके साथ विवाह करने में कोई ऐसी बाधा न थी, यदि कोई बाधा थी तो वह थी लावण्य के प्रति अवनीश का स्नेह।

अपनी इच्छा के साथ उनकी ज़बर्दस्त लड़ाई शुरू हो गई। वह खूब ज़ोरों के साथ पढ़ाई-लिखाई करना चाहते, किन्तु उससे भी प्रवल एक चमत्कार-पूर्ण चिन्ता इस अध्ययन के सिर पर चढ़ बैठती। समालोचना के लिए 'माडर्न रिव्यू'[1] से उनके पास बौद्ध ध्वंसावशेषों के इतिहास-सम्बन्धी लोभनीय पुस्तकें आतीं, किन्तु वे उन खोली भी न गई पुस्तकों के सामने स्थिर होकर चुपचाप बैठे रहते—उस खण्डित बौद्ध स्तूप की भांति जिसके ऊपर शताब्दियों का मौन चिपका हुआ हो। सम्पादक व्यग्र हो उठते किन्तु ज्ञानी का स्तूपाकार ज्ञान जब एक बार अस्थिर हो जाता है तब उसकी दशा इसी प्रकार की हो जाती है। हाथी जब दलदल में पांव रखता है, तब उसकी रक्षा का उपाय क्या हो सकता है?

इतने दिनों बाद अवनीश के मन को एक पश्चात्ताप व्यथित करने लगा। उनके मन में यह बात उठी कि पोथी के पन्नों से ऊपर नज़र उठाने का अवकाश न पाने के कारण ही वे देख न पाए कि उनकी कन्या शोभनलाल को प्यार करती है, और शोभनलाल जैसे लड़के को प्यार न करना ही अस्वाभाविक है। सामान्य भाव से सारी बाप-जाति पर ही उन्हें क्रोध आया, अपने और ननिगोपाल पर तो आया ही।

ऐसे ही समय शोभन के पास से एक चिट्ठी आई। प्रेमचन्द-रायचंद-छात्रवृत्ति[2] के लिए वह गुप्त राजवंश के इतिहास के सम्बन्ध में शोध-प्रबन्ध दाखिल करना चाहता है। इसके लिए उनकी लाइब्रेरी से कुछ पुस्तकें उसे उधार चाहिए। उसी समय अवनीश ने उसे विशेष आदरपूर्वक पत्र लिख दिया, "पहले की ही तरह तुम मेरी लाइब्रेरी में बैठकर अपना काम करो, किसी प्रकार का संकोच मत करो।"

शोभनलाल का मन चंचल हो उठा। उसने समझा कि ऐसी उत्साह-प्रद चिट्ठी के पीछे कदाचित् लावण्य की सम्मति छिपी हुई है। उसने लाइब्रेरी में आना आरम्भ कर दिया। घर के अन्दर आने-जाने के रास्ते में संयोग से कभी क्षण-भर के लिए जब लावण्य का सामना हो जाता, तब शोभन अपनी चाल धीमी कर देता। उसकी तीव्र इच्छा होती कि

१. अंग्रेजी का प्रसिद्ध मासिक पत्र
२. कलकत्ता विश्वविद्यालय की एक विशेष छात्रवृत्ति

लावण्य उससे कुछ वोले, पूछे कि 'तुम कैसे हो ?' जिस शोध-प्रवन्ध के लिखने में वह इतना व्यस्त है, उसके वारे में कुछ कौतूहल प्रकट करे। यदि ऐसा होता तो कापी खोलकर कुछ देर तक लावण्य के साथ आलोचना करके वह जी जाता। उसके कुछ स्वयं निकाले हुए मतों के सम्वन्ध में लावण्य की राय जानने को वह अत्यन्त उत्सुक था। किन्तु अभी तक कोई वात ही न हुई, और अपनी तरफ से छेड़कर कुछ कहने का साहस उसमें था नहीं।

इसी प्रकार कुछ दिन वीत गए। उस दिन रविवार था। शोभनलाल अपनी कापियां टेवल पर सजाए हुए एक किताव के पन्ने उलट रहा था। वीच-वीच में नोट लेता जाता था। दोपहर का समय था; घर में कोई नहीं था। छुट्टी के दिन का सुयोग पाकर अवनीश नाम-ठिकाना विना वताए कहीं चले गए थे, सिर्फ इतना कह गए थे कि आज चाय पीने नहीं आएंगे।

एकाएक भिड़ा हुआ दरवाज़ा खुल गया। शोभनलाल की छाती धक् से हो उठी; वह कांप गया। लावण्य ने कमरे में प्रवेश किया। शोभन घवराकर खड़ा हो गया और उसकी समझ में न आया कि क्या करे। लावण्य आग-ववूला होकर वोली, "आप क्यों आते हैं इस घर में ?"

शोभनलाल चौंक उठा, कुछ वोल न सका।

"आप जानते हैं, यहां आने की वात को लेकर आपके पिता ने क्या कहा है ? मेरा अपमान कराने में आपको संकोच नहीं होता ?"

शोभनलाल ने आंखें नीची किए हुए कहा, "मुझे माफ कीजिए, मैं अभी चला जाता हूं।"

उसके मुंह से यह उत्तर भी नहीं निकल सका कि स्वयं उसके पिता ने उसे आमंत्रण देकर वुलाया है। उसने अपनी कापियां सव इकट्ठी कीं। हाथ थर-थर कांप रहे थे। उसे लगा, मानो एक गूंगी व्यथा छाती की हड्डियों को धकेलकर ऊपर आना चाहती है। पर उसे रास्ता नहीं मिलता। सिर झुकाए वह घर से चला गया।

जिससे अत्यधिक प्रेम किया जा सकता है उसे प्रेम करने का अवसर यदि कोई वाधा पाकर निकल जाता है तो वह केवल प्रेमहीनता में

परिणत होकर ही नहीं रह जाता, वरन अन्धविद्वेष में, जो प्रेम का उलटा पहलू है, वदल जाता है। एक दिन शोभनलाल को ही वरदान देने के लिए लावण्य अपने अदृश्य जगत् में प्रतीक्षा करती बैठी हुई थी। शोभनलाल ने ही उसका आह्वान नहीं किया, उसे आवाज़ नहीं दी। उसके वाद तो जो कुछ हुआ सव उसके विरुद्ध ही हुआ। सवसे ज़्यादा चोट पहुंची इस अन्तिम विदाई के समय। लावण्य ने अपने मन के क्षोभ के कारण पिता के प्रति वहुत वड़ा अन्याय किया। उसके मन में आया कि स्वयं उससे मुक्ति पाने के लिए ही पिता ने अपनी ओर से शोभनलाल को वुलाया है, उन दोनों का मिलन कराने की इच्छा से। इसीलिए उस निरपराध लड़के पर उसका ऐसा दारुण क्रोध उमड़ पड़ा।

इसके वाद तो वार-वार हठ करके लावण्य ने अवनीश का विवाह करा ही दिया। अवनीश ने अपने सञ्चित धन का प्रायः आधा हिस्सा अपनी कन्या के लिए अलग कर दिया था। किन्तु उसके विवाह के वाद लावण्य, ने कहा कि वह अपनी पैतृक सम्पत्ति में से कुछ न लेगी, स्वयं उपार्जन करके अपना खर्च चलाएगी। अवनीश ने मर्माहत होकर कहा, "लावण्य, मैं तो विवाह करना चाहता न था, तुम्हींने तो हठ करके यह व्याह कराया है। तव तुम आज इस तरह मेरा त्याग क्यों कर रही हो ?"

लावण्य वोली, "हमारा सम्वन्ध कभी टूटे नहीं इसीलिए मैंने यह निश्चय किया है। वावू, तुम कुछ चिन्ता न करो। जिस रास्ते से मैं सचमुच सुखी होऊं, उसीके लिए सदा अपना आशीर्वाद देते रहना।"

उसे काम मिल गया। सरमा को पढ़ाने का पूरा भार उसीके ऊपर है। वह यतिशंकर को भी भली भांति पढ़ा सकती थी, किन्तु किसी नारी शिक्षयित्री से पढ़ने में अपमान का वोध कर यति ही इसके लिए तैयार नहीं हुआ।

प्रतिदिन के वंधे-वंधाए कामों में उसका जीवन किसी प्रकार वीत रहा था। जो समय वच जाता उसे वह अंग्रेज़ी-साहित्य के अध्ययन में लगाती। प्राचीन काल से लेकर वर्नार्ड शा के समय तक का पूरा साहित्य उसके अध्ययन का विषय था, विशेषतः ग्रीक और रोमन युगों के इतिहास और ग्रोट, गिवन तथा गिलवर्ट मरे की रचनाओं में उसकी विशेष अनुरक्ति थी। ऐसा तो नहीं कहा जा सकता कि अवकाश के समय कोई

चंचल वायु आकर उसके मन में कभी उथल-पुथल न मचा सकी होगी, पर उस हवा से बड़ा कोई स्थूल व्याघात एकाएक उसकी जीवन-यात्रा में आ पड़ेगा, ऐसा कोई बड़ा छिद्र उसने नहीं रखा था। पर ऐसे ही समय मोटर में बैठकर व्याघात आ ही गया खुले रास्ते में अपने आने की कोई सूचना दिए बिना। हठात् ग्रीस रोम का विराट इतिहास हलका हो पड़ा, और उसके सर्वस्व को हटाकर अत्यन्त निकट का एक निविड़ वर्तमान उसे झकझोरकर पुकार उठा, "जागो!" लावण्य एक ही मुहूर्त में जग उठी और इतने दिन बाद अपने को वास्तविक रूप में देख पाई, ज्ञान में नहीं वेदना में।

५

बातचीत का आरम्भ

अब अतीत के भग्नावशेष से हमें वर्तमान की नवीन सृष्टि के क्षेत्र में लौट चलना चाहिए।

लावण्य पढ़ने के कमरे में अमित को बिठाकर योगमाया को खबर देने चली गई। उस कमरे में अमित इस प्रकार बैठ गया, जैसे किसी कमल के बीच भौंरा आकर बैठा हो। चारों ओर देखता है, सभी चीजें किसीके द्वारा स्पर्श की हुई-सी लगती हैं, और यही बात उसके मन को उदास कर देती है। शेल्फ में और पढ़ने के टेबल पर उसने अंग्रेज़ी-साहित्य की पुस्तकें देखीं। वे पुस्तकें ऐसी लगीं मानो जीवित हो उठी हों। सब लावण्य की पढ़ी हुई पुस्तकें हैं। उसकी अंगुलियों से पन्ने उलटे गए हैं। उनमें उसकी दिन-रात की भावना लगी हुई है; उसकी उत्सुक दृष्टि इनके पथ पर चलती रही है। उदासी के दिनों में ये उसकी गोद में पड़ी रही हैं। जब उसने टेबल पर अंग्रेज़ कवि डान का काव्य-संग्रह पड़ा देखा तो चौंक उठा। जब वह आक्सफोर्ड में था तब डान तथा उसके समय के अन्य कवियों के गीति-काव्य उसकी आलोचना के मुख्य विषय थे। इस स्थान पर इस काव्य के द्वारा दैवयोग से दोनों प्राणियों के मन ने एक जगह आकर एक-दूसरे को स्पर्श किया।

इतने समय से निरुत्सुक दिन-रात के दाग लग-लग कर अमित का जीवन धुंधला हो गया था, जैसे मास्टर के हाथ में कई साल से स्कूल में पढ़ाई जानेवाली ढीली जिल्द की किताब हो। आगामी दिन के लिए कोई कौतूहल, कोई उत्सुकता उसमें नहीं थी और वर्तमान दिन की भी पूर्ण हृदय से अभ्यर्थना करना उसके लिए अनावश्यक था। किन्तु अब मानो वह एक नई दुनिया में आ पहुंचा है जहां वस्तुओं का भार कम है और जहां चरण भूमि से ऊपर उठे जाते हैं; प्रतिक्षण व्यग्र होकर अचिन्त्य दिशा की ओर बढ़ता जाता है; देह में हवा लगती है और सारा शरीर मानो बांसुरी बन जाना चाहता है; आकाश की ज्योति रक्त के भीतर प्रवेश कर जाती है; अन्दर ही अन्दर उसमें एक ऐसी उत्तेजना का संचार होता है जैसी पौधे के अंग-अंग में प्रवाहित होनेवाले रस में फूल बनकर खिल उठने के लिए होती है। मन के ऊपर न जाने कब से पड़ी हुई धूल का पर्दा उठ गया है और सामान्य चीज़ों में भी एक असाधारणता आ गई है। इसीसे योगमाया ने जब धीरे-धीरे आकर कमरे में प्रवेश किया, तब उस सहज कार्य में भी अमित को आज विस्मय-सा हुआ। उसने मन ही मन कहा, 'अहा, यह तो आगमन नहीं, आविर्भाव है।'

चालीस के आसपास उनकी उम्र है, किन्तु उम्र ने उन्हें शिथिल नहीं किया है बल्कि एक गंभीर शुभ्रता दी है। गोरा-भरा मुंह चमक-चमक उठता है। बाल वैधव्य की दृष्टि से छंटे हुए हैं। मातृभाव से भरे पूर्णतः प्रसन्न नयन हैं और उनमें स्निग्ध हंसी फूटी पड़ती है। मोटी चादर से सिर से लेकर समस्त देह ढकी हुई है। पांव में जूते नहीं हैं। दोनों पांव निर्मल और सुन्दर हैं। अमित ने उनके पांव छूकर जब प्रणाम किया तो उसकी शिरा-शिरा में, नस-नस में मानो देवी के प्रसाद की धारा बह उठी।

प्रथम परिचय के बाद योगमाया बोलीं, "तुम्हारे काका अमरेश हमारे ज़िले के सबसे बड़े वकील थे। एक बार एक सर्वनाशी मुकदमे में हम सब भिखारी होने की स्थिति में आ गए थे; तब उन्होंने हमें बचा लिया था। मुझे वे 'बहूदीदी' (भाभी) कहकर पुकारा करते थे।"

अमित ने कहा, "मैं उन्हींका अयोग्य भतीजा हूं। काका ने

नुकसान से वचा लिया था और मैंने नुकसान कर दिया है। आप उनकी लाभ की भाभी थीं, और मेरी हुईं नुकसान की मौसी।"

योगमाया ने पूछा, "तुम्हारी मां हैं ?"

अमित ने कहा, "थीं, परन्तु मौसी का होना भी खूव उचित था।"

"मौसी के लिए खेद क्यों करते हो वेटा ?"

"आप ही सोच देखिए। आज अगर मां की गाड़ी तोड़ देता तो उनकी डांट-फटकार का कोई अन्त न होता। कहतीं—यह गधापन है। और गाड़ी जब मौसी की है तो वे मेरी अपटुता देख हंस देती हैं, मन ही मन कहती हैं, अभी लड़का है।"

योगमाया हंसकर वोलीं, "तब तो गाड़ी मौसी की ही समझो।"

अमित उछल पड़ा और योगमाया के पांव की धूल सिर से लगाकर वोला, "इसीलिए तो पूर्वजन्म का कर्मफल मानना पड़ता है। मां की कोख से जन्म लिया है, किन्तु मौसी को पाने के लिए तो कोई भी तपस्या नहीं की। गाड़ी तोड़ने को तो सत्कर्म कहा नहीं जा सकता, किन्तु एक ही क्षण में देवता के वरदान की भांति मौसी जीवन में आ गई, इसके पीछे कितने युगों की सूचना है, ज़रा इसपर विचार तो कीजिए।"

योगमाया ने हंसकर कहा, "कर्मफल किसका वेटा? तुम्हारा अथवा मेरा, अथवा जो मोटर-मरम्मत का काम करता है उसका ?"

अपने घने वालों को अंगुलियों से पीछे की ओर करता हुआ अमित वोला, "सख्त सवाल है। कर्म एकाकी नहीं है, सारे विश्व का है। नक्षत्र से नक्षत्र तक उसीकी सम्मिलित धारा युग-युग से चलकर आती हुई शुक्रवार को ठीक नौ वजकर अड़तालीस मिनट पर एक धक्का मार गई। उसके वाद ?"

योगमाया कनखियों से लावण्य की ओर देखकर ज़रा हंस दी। अमित के साथ यथेष्ट वातचीत होते न होते उन्होंने ठीक कर लिया था कि इन दोनों का व्याह होना ही चाहिए। इसी वात को लक्ष्य कर उन्होंने कहा, "वेटा, तुम दोनों वैठकर अभी वात करो, मैं तुम्हारे खाने-पीने का इन्तजाम करके आती हूं।"

तीव्र गति से वातचीत का रंग जमा देने की क्षमता अमित में है। उसने एकवारगी शुरू कर दिया, "मौसी ने हमें वातचीत करने की

आज्ञा दी है। वातचीत और परिचय का आरम्भ होता है नाम से। पहले उसे ही पक्का कर लेना उचित है। आप मेरा नाम जानती हैं न ? मेरा मतलव है अंग्रेज़ी व्याकरण में जिसे प्रापर नेम कहते हैं।"

लावण्य वोली, "मैं तो जानती हूं कि आपका नाम अमित वावू है।"

"वह नाम सव क्षेत्रों में नहीं चलता।"

लावण्य हंसकर वोली, "क्षेत्र अनेक हो सकते हैं, किन्तु अधिकारी का नाम तो एक ही होना चाहिए।"

"आप जो वात कह रही हैं वह इस ज़माने की वात नहीं है। देश, काल, पात्र में भेद है, तव नाम में भेद न हो, यह अवैज्ञानिक है। मैंने निश्चय किया है कि 'रिलेटिविटी आफ नेम्स' (नामों की आपेक्षिकता) का प्रचार कर मैं नाम कमाऊंगा। इसलिए शुरू में ही वता देना चाहता हूं कि आपके मुख से मेरा नाम अमित वावू न होगा।"

"आप साहवी कायदा पसन्द करते हैं ? क्या मिस्टर राय कहूं ?"

"यह तो विलकुल समुद्र के उस पार, वहुत दूर का नाम है। नाम की दूरी को ठीक करने के लिए नापकर देखना पड़ता है कि शव्द को कान के सदर दरवाज़े से मन के अन्दर पहुंचने में कितने क्षण लगते हैं।"

"तव सुनूं तो द्रुतगामी नाम क्या है ?"

"वेग को वढ़ाने के लिए वस्तु को छोटा करना होगा। अमित वावू में से वावू को हटा दीजिए।"

लावण्य वोली, "यह सरल नहीं है। इसमें समय लगेगा।"

"सवके लिए समान समय लगना उचित नहीं। एक ही समय, एक ही घड़ी का कोई पदार्थ त्रिभुवन में नहीं है; जेव-घड़ी ज़रूर है जिसकी चाल जेव के अनुसार ही होती है। आइनस्टीन का यही मत है।"

लावण्य उठती हुई वोली, "अरे, आपके स्नान का जल ठण्डा हुआ जा रहा है।"

"यदि आप वातचीत के लिए थोड़ा समय और दें तो मैं ठण्डे जल को शिरोधार्य कर लूंगा।"

"और समय नहीं है, काम है।" कहकर लावण्य चली गई।

अमित तुरन्त ही स्नान करने नहीं गया। लावण्य की प्रत्येक वात

में मन्द मुस्कान-मिश्रित कैसा एक स्वाद था, बैठे-बैठे इसीकी याद करने लगा। अमित ने अनेक सुन्दरी लड़कियों को देखा है, उनका सौन्दर्य पूर्णिमा की रात की तरह उज्ज्वल परन्तु आच्छन्न था ; लावण्य का सौन्दर्य प्रभातकाल के समान है, उसमें अस्पष्टता का मोह नहीं है, उसका सब कुछ बुद्धि से व्याप्त है। विधाता ने उसे लड़की के रूप में गढ़ते समय पुरुष का भी कुछ अंश मिला दिया है। उसे देखते ही मालूम पड़ता है कि उसमें केवल वेदना की शक्ति ही नहीं है, उसके साथ ही मनन की भी शक्ति है। इस बात ने ही अमित को इतना अधिक आकर्षित किया है। अमित के अन्दर बुद्धि है, क्षमा नहीं है ; विचार है, धैर्य नहीं है ; उसने बहुत कुछ जाना-सुना है, किन्तु शान्ति नहीं पा सका है। लावण्य के मुख पर उसने शान्ति का एक ऐसा रूप देखा है जो हृदय की तृप्ति से नहीं, बल्कि उसकी विवेक-शक्ति की गम्भीरता के बीच स्थिर है।

६

नूतन परिचय

अमित मिलनसार आदमी है। प्रकृति के सौन्दर्य को लेकर वह ज़्यादा देर तक रह नहीं सकता। उसे सदा ही बक-झक करते रहने की आदत है। पेड़-पौधों और पहाड़-पर्वतों के साथ हंसी-मसखरी नहीं चल सकती; उनके साथ किसी प्रकार का उलटा व्यवहार करने की चेष्टा करते ही खुद मार खानी पड़ती है। वे नियम से चलते हैं और दूसरों के व्यवहार में भी नियम की आशा रखते हैं। संक्षेप में कहें तो कह सकते हैं कि वे अरसिक हैं; इसीलिए शहर के बाहर अमित के प्राण हांफ उठते हैं।

किन्तु हठात् न जाने क्या हो गया कि शिलांग पहाड़ अमित को चारों ओर से अपने ही अन्दर रस से भरे दे रहा है। आज वह सूर्य निकलने के पहले ही उठ गया है, यद्यपि यह उसके स्वधर्म के, उसकी आदत के विरुद्ध है। खिड़की से देखा कि देवदारु की झालरें हिल रही हैं और

उनके पीछे, हलके वादलों के ऊपर से, पहाड़ के उस पार से सूर्य अपनी तूलिका से लम्बी सुनहली रेखाएं खींच रहा है। अग्निज्वलित रंगों में जो आभा फटी पड़ती है, उसके वारे में चुप रहने के सिवा और कोई उपाय नहीं है।

जल्दी से एक प्याला चाय पीकर अमित घर से निकल पड़ा। रास्ता तव निर्जन था। एक काई लगे वहुत पुराने पाइन वृक्ष के नीचे, उसके प्रत्येक स्तर से झरे हुए पत्तों के अत्यन्त सुगन्धित विछौने पर पांव फैलाकर वैठ गया। सिगरेट जलाकर दो अंगुलियों के वीच दवाए वैठा रहा, पीना ही भूल गया।

यह वन योगमाया के घर के रास्ते में है। भोज में वैठने के पहले रसोईघर से जैसे खुशवू मिला करती है वैसे ही इस जगह से योगमाया के घर का सौरभ अमित को मिलता रहता है। घड़ी का कांटा ठीक स्थान पर पहुंचते ही वह उनके घर जाकर एक प्याला चाय का दावा करेगा। पहले वहां जाने का समय शाम को निश्चित था। साहित्य-रसिक होने की शोहरत के कारण आकर वातचीत और आलोचना करने के लिए अमित को स्थायी रूप से निमन्त्रण मिल चुका था। पहले दो-चार दिन तो योगमाया ने इस आलोचना में उत्साहपूर्वक भाग लिया, किन्तु शीघ्र ही उन्हें मालूम हो गया कि उनके रहने से उन लोगों का उत्साह कुछ कुण्ठित हो जाता है। उनके लिए यह समझना कुछ कठिन नहीं था कि द्विवचन की जगह वहुवचन का प्रयोग ही इसका कारण है। तव से योगमाया कोई न कोई कारण वताकर वहां से हट जाया करती हैं। ज़रा विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि ये कारण अनिवार्य नहीं हैं, दैविक नहीं हैं, स्वयं अपनी इच्छा द्वारा उत्पन्न हुए हैं। इसका सवूत था; मालकिन मां ने देख लिया कि इन दोनों आलोचनापरायणों में जो अनुराग है वह साहित्यानुराग से कुछ ज़्यादा गाढ़ा है। अमित ने भी समझ लिया कि मौसी की उम्र कुछ अधिक हो जाने पर भी उनकी दृष्टि तीक्ष्ण है और मन भी कोमल है। इस परिस्थिति के कारण आलोचना में उसका उत्साह वढ़ता ही गया। आने-जाने का जो नियत समय था उसे और लम्वा करने के अभिप्राय से उसने यतिशंकर के साथ मिलकर तय कर लिया कि वह सुवह एक घण्टा और शाम को दो घण्टे अंग्रेज़ी-

साहित्य पढ़ाने में उसकी सहायता किया करेगा। और सहायता जो शुरू हुई तो ऐसी बढ़ी कि प्रायः प्रातःकाल दोपहर तक खिंचने लगा और सहायता इधर-उधर की बातचीत में बदल जाती—यहां तक कि योगमाया और शिष्टाचार के अनुरोध से दोपहर का भोजन भी प्रायः एक आवश्यक कर्तव्य बन जाता। इस तरह दिखाई पड़ा कि आवश्यक कर्तव्यों की परिधि बराबर बढ़ती ही जाती है।

यतिशंकर के अध्यापन में सहायता देने का समय निश्चित हुआ था सवेरे आठ बजे। परन्तु उसकी प्रकृति की दृष्टि से यह असमय था। वह कहता था कि जिस प्राणी के गर्भवास की मियाद दस महीने की है, उसके सोने की मियाद पशु-पक्षियों के सोने की मियाद नापकर तय करना उचित नहीं है। अब तक अमित की रात ने सुबह के भी कई घंटे दबा-चुरा लिए थे (मतलब वह सुबह देर तक सोता था)। उसका कहना था कि यह चुराया हुआ समय अवैध होने के कारण ही नींद के लिए सबसे अधिक अनुकूल है।

किन्तु आजकल उसकी नींद वैसी नहीं रह गई है। अब उसमें सुबह-सुबह उठ बैठने का एक आग्रह छिपा रहता है। प्रयोजन के पहले ही नींद टूट जाती है और फिर करवट बदलकर सोने का साहस नहीं होता। डर लगा रहता है कि देर न हो जाए। बीच-बीच में घड़ी का कांटा आगे बढ़ा देता है, किन्तु समय की चोरी के अपराध में पकड़े जाने के भय से बार-बार तो ऐसा करना सम्भव नहीं। आज उसने एक बार घड़ी की ओर देखा; अभी तो समय सात के इसी पार है। मन में आया कि घड़ी ज़रूर बन्द हो गई है, परन्तु कान के पास ले गया तो सुना कि टिक्-टिक् शब्द हो रहा है।

इसी समय चौंककर देखा कि दाहिने हाथ में छाता हिलाती हुई, ऊपर के रास्ते से लावण्य आ रही है। सफेद साड़ी है; पीठ पर काले रंग का तिकोना शाल है जिससे निकलकर काली झालर लटक रही है। अमित को समझते देर न लगी कि लावण्य ने अपनी आधी दृष्टि से उसे देख लिया है किन्तु सम्पूर्ण दृष्टि से उसके सामने स्वीकार करने में वह नाराज़ होती है। बांध के मुंह तक लावण्य के पहुंचते न पहुंचते अमित से और रहा नहीं गया; दौड़ते-दौड़ते उसके पास पहुंच गया।

बोला, "जानती थीं कि छिप नहीं सकतीं, फिर भी दौड़ करा ही ली। जानती नहीं क्या कि दूर चले जाने से कितनी असुविधा होतीहै?"

"किस बात की असुविधा ?"

अमित ने कहा, "जो अभागा पीछे पड़ा रह जाता है वह अपने प्राण से जोर के साथ पुकारना चाहता है। किन्तु पुकारे क्या कहकर ? देवी-देवताओं के साथ तो यह असुविधा है कि नाम लेकर पुकारने से ही वे खुश होते हैं। दुर्गा-दुर्गा कहकर गर्जन करने पर भी भगवती दशभुजा असन्तुष्ट नहीं होतीं। परन्तु आप लोगों के साथ तो मुश्किल है।"

"न पुकारने से समस्या हल हो जाती है।"

"जब पास रहती हैं तब बिना सम्बोधन के ही काम चला लेता हूं। तभी तो कहता हूं, दूर न जाया कीजिए। पुकारना चाहता हूं पर पुकार नहीं सकता, इससे बढ़ कर दुःख और क्या हो सकता है!"

"क्यों, विलायती कायदे का अभ्यास तो आपको है ही।"

"मिस डट्ट ? वह तो चाय की टेबल पर। देखिए न, आज इस आकाश के साथ पृथ्वी जब प्रातःकाल के प्रकाश में मिली तो उस मिलन के लग्न को सार्थक करने के लिए दोनों ने मिलकर एक रूपसृष्टि की और उसीमें रह गया स्वर्ग-मर्त्य का पुकारने का नाम। क्या मन में यह बात नहीं आ रही है कि यह नाम लेकर पुकारना ऊपर से नीचे आ रहा है और नीचे से ऊपर जा रहा है ? क्या मनुष्य के जीवन में भी इस प्रकार की नाम-सृष्टि करने का समय उपस्थित नहीं होता ? कल्पना कीजिए कि मैंने अपने समस्त प्राण से, मुक्तकण्ठ से आपको पुकारा है, नाम की पुकार वन-वन में ध्वनित हो उठी है, आकाश के उन रंगीन बादलों तक जा पहुंची है और सामने का वह पहाड़ उस पुकार को सुनकर अपने सिर से मेघ को लपेटे खड़ा-खड़ा कुछ सोचने लगा है, तब क्या आप सोच भी सकती हैं कि मेरी वह पुकार 'मिस डट्ट' होगी ?"

लावण्य इस बात को टालती हुई बोली, "नामकरण में समय लगता है। आइए, ज़रा टहल लिया जाए।"

अमित उसके साथ चलते हुए बोला, "चलना सीखने में ही मनुष्य को देर लगती है परन्तु मेरे साथ उलटा हुआ ; इतने दिनों बाद यहां आकर मैंने बैठना सीखा है। अंग्रेज़ी कहावत है कि लुढ़कते पत्थर के

भाग्य में काई भी नहीं,[1] यही सोचकर अंधेरा रहते ही कब से रास्ते के किनारे बैठ रहा हूं। तभी तो भोर की ज्योति देख पाया।"

लावण्य चट उसकी बात को दबाकर पूछ बैठी, "उस सब्ज़ रंग की चिड़िया का नाम जानते हैं आप?"

अमित बोला, "जीव-जगत् में चिड़ियां भी हैं, इसे आज तक साधारण रूप में जानता था, विशेष रूप से जानने का समय ही मुझे नहीं मिला। आश्चर्य की बात है कि यहां आकर स्पष्ट जान पाया हूं कि चिड़ियां न केवल हैं, बल्कि गाना भी गाती हैं।"

लावण्य हंसकर बोली, "आश्चर्य!"

अमित बोला, "हंस रही हैं! मैं अपनी गंभीर बात को भी गंभीरता के साथ नहीं कह पाता। यह मेरा मुद्रा-दोष है। मेरे जन्म-लग्न में चन्द्र है और यह ग्रह कृष्ण चतुर्दशी की सर्वनाशा रात्रि को भी बिना हंसे-मुस्कराए मरना तक नहीं जानता।"

लावण्य ने कहा, "मुझे दोष न दीजिए। लगता है कि चिड़िया भी आपकी बात सुनती तो हंस देती।"

अमित ने कहा, "देखिए, मेरी बात लोग हठात् समझ नहीं पाते, इसीसे हंस देते हैं। समझते तो चुप बैठकर उसपर विचार करते। आज चिड़िया को नये रूप में जान पाया, इसे सुनकर लोग हंसते हैं किन्तु इसके भीतर का मर्म यह है कि आज मैंने सब कुछ नये रूप में देखा-जाना है; अपने को भी। इसपर तो हंसी नहीं चल सकती। देखिए न, बात तो वही है, किन्तु इस बार आप बिलकुल ही चुप हैं।"

लावण्य हंसती हुई बोली, "आप तो मेरे लिए ज़्यादा दिन के आदमी नहीं हैं, बिलकुल नये हैं तब और भी नये का यह आग्रह आपमें आता कहां से है?"

"इसके जवाब में मुझे एक गंभीर बात कहनी पड़ रही है जो चाय के टेबल पर नहीं कही जा सकती। मेरे भीतर नई जो बात आई है वह है तो अनादिकाल की पुरानी, प्रातःकाल के प्रकाश के समान पुरानी, नये खिले चम्पा के फूल के समान पुरानी, किन्तु मेरे लिए उसका आविष्कार नया है।"

---

१. रोलिंग स्टोन गैदर्स नो मॉस

लावण्य विना कुछ वोले हंस दी।

अमित वोला, "आपकी इस वार की हंसी पहरेवाले की चोर पकड़नेवाली गोल लालटेन की हंसी है। जान गया कि आप जिस कवि की भक्त हैं, उसकी पुस्तक में मेरे मुंह से निकली यह वात पहले ही पढ़ चुकी हैं। दुहाई है आपकी, मुझे कहीं दागी चोर न समझ लीजिएगा। कभी-कभी ऐसी हालत हो जाती है कि मन का अन्तरंग शंकराचार्य हो उठता है जो कहता है कि मैंने लिखा है या दूसरे किसीने लिखा है, यह भेद-ज्ञान माया है, यही देखिए न, आज प्रातःकाल वैठे हुए अकस्मात् ख्याल आया कि अपने जाने-पढ़े हुए साहित्य में से ऐसी एक लाइन निकाल लूं जो जान पड़े कि वह मैंने ही लिखी है, और कोई दूसरा कवि उसे लिख ही नहीं सकता था।"

लावण्य चुप नहीं रह सकी; उसने प्रश्न किया, "निकाल पाए?"

"हां, पा लिया।"

लावण्य के कौतूहल ने कोई वाधा न मानकर पूछा, "कौन-सी लाइन है, वह वोलिए न।"

अमित ने खूब आहिस्ता-आहिस्ता कहा, जैसे कान में फुसफुसा रहा हो, "For God's sake, hold your tongue
and let me love!"[१]

लावण्य का हृदय अन्दर से कांप उठा।

वहुत देर वाद अमित ने पूछा, "निश्चय ही आप जानती हैं कि लाइन किसकी है?"

लावण्य ने ज़रा सिर हिलाकर इशारे से वता दिया, "हां।"

अमित ने कहा, "उस दिन आपकी टेवल पर मैंने अंग्रेज़ कवि डान की पुस्तक का आविष्कार किया था, नहीं तो यह लाइन मेरे दिमाग में न आती।"

"आविष्कार किया था?"

"आविष्कार नहीं तो और क्या? पुस्तक की दूकान पर पुस्तक आंखों को दिखाई पड़ती है; आपकी टेवल पर वह प्रकाश पाती है।

---

१. ईश्वर के नाम पर अपनी जिह्वा रोक लो और मुझे प्रेम करने दो!

मैंने पब्लिक लाइब्रेरी की टेवल भी देखी है जिसपर वहुतेरी पुस्तकें पड़ी रहती हैं ; आपकी टेवल देखी, वह पुस्तकों को रहने के लिए घर देती है। उसी दिन डान की कविता को मैं प्राणों से देख पाया। मालूम हुआ जैसे अन्य कवियों के दरवाज़े पर ठेलमठेल भीड़ हो। जैसे किसी वड़े आदमी के श्राद्ध में कंगले दान ले रहे हों। डान का काव्य-महल निर्जन है; वहां दो प्राणियों के आसपास वैठने-भर की जगह है। तभी तो प्रात:काल मन की वात को स्पष्ट सुन सका :

दोहाई है रे तेरी, ज़रा-सा तो चुप कर,
प्रेम कर लेने का तो मुझे दे तू अवसर।

लावण्य ने विस्मित होकर पूछा, "आप कविता भी करते हैं?"

"भय है कि आज से कहीं लिखना न शुरू कर दूं। नया अमित राय क्या काण्ड कर डालेगा, पुराने अमित राय को यह कुछ भी मालूम नहीं है। हो सकता है कि वह अभी लड़ाई करने चल दे।"

"लड़ाई ? किसके साथ ?"

"वह भी ठीक नहीं कर सका हूं। केवल मन में आता है कि खूव महान किसी एक के लिए इसी समय आंख मूंदकर प्राण उत्सर्ग कर देना चाहिए। उसके वाद अनुताप करना पड़ा तो धीरे-धीरे करता रहूंगा।"

लावण्य ने हंसकर कहा, "प्राण यदि देना ही हो तो होशियार होकर दीजिएगा।"

"मुझसे यह कहना अनावश्यक है। कम्यूनल रायट (साम्प्रदायिक दंगे) में जाना मुझे पसन्द नहीं। मुसलमान से वचकर और अंग्रेज़ से भी वचकर चलता हूं। जव देखता हूं कि कोई वूढ़ा-ऊढ़ा आदमी है, अहिंसक मिज़ाज का धार्मिक चेहरा है, सिंगा—भोंपू—वजाता हुआ मोटर हांकता जा रहा है तव उसके सामने खड़ा होकर रास्ता रोककर कहता हूं—'युद्धं देहि' या फिर जो लोग अजीर्ण रोग दूर करने के लिए अस्प-ताल न जाकर ऐसे पहाड़ पर आते हैं और भूख वढ़ाने के लिए निर्लज्ज होकर हवा खाने निकलते हैं, उनसे ऐसा कहता हूं।"

लावण्य हंसकर वोली, "और वह आदमी यदि इतने पर भी आपकी इच्छा को अमान्य करके चला जाए ?"

"तव मैं पीछे से दोनों हाथ आकाश की ओर उठाकर कहूंगा,

"जाओ, इस वार क्षमा कर दिया क्योंकि तुम हमारे भाई हो, हम एक ही भारतमाता की सन्तान हैं। समझ रही हैं? मन जब खूब बड़ा हो जाता है तब आदमी युद्ध भी करता है, क्षमा भी करता है।"

लावण्य ने हंसते हुए कहा, "आपने जब युद्ध का प्रस्ताव किया था तब मन में बड़ा भय हुआ था, किन्तु जिस प्रकार क्षमा की बात समझा दी उससे आश्वस्त हुई कि चिन्ता करने की कोई बात नहीं है।"

अमित बोला, "मेरा एक अनुरोध मानिएगा?"

"क्या, कहिए।"

"आज भूख बढ़ाने के लिए अब ज़्यादा न घूमिए।"

"अच्छी बात है। उसके बाद?"

"उस पेड़ की छाया में, जहां नाना रंगों के काई लगे पत्थरों के नीचे से थोड़ा-थोड़ा जल झिर-झिर करके बह रहा है, चलकर बैठा जाए।"

लावण्य कलाई में बंधी घड़ी की ओर देखकर बोली, "किन्तु समय बहुत थोड़ा है।"

यही तो जीवन की शोचनीय समस्या है लावण्यदेवी कि समय थोड़ा है, मरुभूमि का रास्ता है, और साथ में आधी ही मशक पानी है। इसलिए बड़ी सावधानी रखनी होगी कि कहीं वह छलक-छलककर सूखी धूल में नष्ट न हो जाए। जिनके पास समय का विस्तार है उन्हीं के लिए पंक्चुअल (समय का पाबन्द) होना शोभा देता है। देवता के हाथ में असीम समय है इसीलिए ठीक समय पर सूर्य निकलता है और ठीक समय पर अस्त होता है। हमारी मियाद थोड़ी है, इसलिए पंक्चुअल होने में समय नष्ट करना ही हमारे लिए फिज़ूलखर्ची है। अमरावती का कोई यदि प्रश्न करे कि 'संसार में आकर क्या किया?' तो किस शर्म के साथ कहूंगा कि 'घड़ी के कांटे की ओर आंख लगाए काम करते-करते जीवन में जो कुछ समयातीत था, उसकी ओर देखने का समय ही न मिला।' तभी तो कहा कि चलिए उस जगह बैठें।"

अमित जब बातचीत करता है तो इस आशंका को एकदम भुला देता है कि जिस काम में उसे एतराज़ नहीं उसमें किसी दूसरे को एतराज़ हो सकता है। इसीलिए उसके प्रस्ताव पर आपत्ति करना मुश्किल

हो जाता है। लावण्य ने कहा, "चलिए।"

घने वन की छाया है। उसमें से होकर एक पतला रास्ता नीचे किसी खासिया[1] ग्राम की ओर चला गया है। बीच में एक छोटे झरने की धारा ने बस्ती की ओर जानेवाले उस रास्ते को काटकर अपने अधिकार के चिह्नस्वरूप गोल-गोल कंकड़-पत्थर बिछा दिए हैं और अपना एक स्वतन्त्र रास्ता चालू कर दिया है। उसी जगह पत्थरों के ऊपर दोनों प्राणी बैठ गए। उस जगह गड्ढा गहरा होने के कारण कुछ जल जमा हो गया है मानो हरे पर्दे की छाया में कोई पर्दानशीन स्त्री हो और बाहर पांव निकालने में डर रही हो। यहां निर्जनता का जो आवरण था वही लावण्य को निरावरण (बेपर्दा) की भांति लज्जित करने लगा। कोई भी सामान्य बात चलाकर उस लज्जा को ढक लेने का मन करता है किन्तु कोई बात सूझ नहीं पड़ती। उसकी वही दशा हो गई जैसे सपने में कण्ठरोध होने पर होती है।

अमित समझ गया कि उसे कुछ कहना ही चाहिए। बोला, "आर्ये! देखो, हमारे देश में दो तरह की भाषाएं हैं—एक साधु, दूसरी प्रचलित। किन्तु इनके अलावा भी एक और भाषा का होना उचित था, समाज की भाषा नहीं, व्यवसाय की भाषा नहीं, ओट की भाषा, ऐसी जगहों के लिए, पंखी के गान जैसी, कवि के काव्य के समान। उस भाषा का अनायास ही कण्ठ से उच्छ्वसित होकर बाहर निकलना उचित था, ठीक वैसे जैसे रोना फूट निकलता है। उसके लिए आदमी को किताब की दुकान की ओर दौड़ना पड़े, यह बड़ी लज्जा की बात है। हंसने के लिए हर बार अगर डेंटिस्ट की दुकान पर दौड़ना पड़े तो ज़रा सोचिए हमारी क्या दशा हो। सच बताइए लावण्यदेवी, क्या इस स्थान पर आपको सुर-ताल में बात करने की इच्छा नहीं होती?"

लावण्य सिर नीचा किए चुपचाप बैठी रही।

अमित बोला, "चाय की टेबल की भाषा में क्या भद्र है क्या अभद्र, इसका हिसाब ही खत्म होना नहीं चाहता। किन्तु इस जगह तो न भद्र है, न अभद्र है। तब बताइए, इसका क्या उपाय है? मन को

---

१. असम की एक आदिमवासी जाति

सहज बनाने के लिए एक कविता पढ़े विना काम नहीं चलने का। गद्य बड़ा समय लेता है; और उतना समय तो हमारे पास है नहीं। यदि इजाज़त दें तो शुरू करूं।"

और इजाज़त देनी पड़ी, नहीं तो लज्जा करते ही लज्जा आ जाती।

अमित ने भूमिका बांधते हुए कहा, "जान पड़ता है रवि ठाकुर की कविता आपको अच्छी लगती है?"

"हां, लगती तो है।"

"मुझे अच्छी नहीं लगती इसलिए मुझे माफ कर देंगी। मेरा एक विशेष प्रिय कवि है। उसकी रचना इतनी अच्छी है कि बहुत ही थोड़े लोग उसे पढ़ते हैं। यही क्यों, कोई निन्दा करने का सम्मान भी उसे नहीं देता। इच्छा होती है, मैं उसीमें से कुछ सुनाऊं।"

"आप इतना डरते क्यों हैं?"

"इस बारे में मेरा ज्ञान शोचनीय है। निन्दा करने पर आप लोग कविवर को जाति से निकाल देती हैं, और कोई चुपचाप जाल काटकर निकल जाना चाहता है तो उसके लिए भी कठोर भाषा की सृष्टि होती है। जो मुझे अच्छा लगता है वही दूसरे को क्यों अच्छा नहीं लगता, इसी बात को लेकर पृथ्वी पर इतना रक्तपात होता है।"

"मेरे पास बैठकर रक्तपात का कोई भय न कीजिएगा। और अपनी रुचि के लिए मैं दूसरों की रुचि के समर्थन की भी भीख नहीं मांगती।"

"ठीक कहा आपने। अब निर्भय होकर शुरू कर रहा हूं:

रे अपरिचित, किस तरह तू मुक्त होगा बद्ध कर से,
जब तलक तेरा न परिचय पा सकेंगे प्राण मेरे।

देखिए विषय क्या है। न पहचानने का बन्धन; सबसे कड़ा बन्धन। न पहचाने जगत् का बन्दी बना हूं; पहचानने पर ही छुटकारा होगा। इसे ही कहते हैं मुक्तितत्त्व।

नींद में या जागरण में सो रहा था प्राण मेरा,
अन्त्यक्षण में देखकर तुमको हुआ मानो सवेरा।
पूछ बैठा—किस जगह प्रच्छन्न बैठी थीं मराली,
आत्मविस्मृति-कक्ष में क्यों जा छिपी फिर आज आली?

अपने को भूले रहने के समान अंधेरा काना और क्या हो सकता है ? संसार में कितनी ही देखने योग्य निधियों को नहीं देखा, वे सब आत्मविस्मृति के कोने में जाकर छिप गई हैं। पर यह कहकर तो पतवार को छोड़ा नहीं जा सकता :

और तेरे साथ परिचय भी सहज होता नहीं है,
नाम जपकर कण्ठ मृदु से पा सकूंगा जय तुम्हारी।
लाज, शंका और द्विधा से युक्त वाणी,
पर तुम्हें मैं खींच लाऊंगा निठुर आलोक में इस।

कवि छोड़नेवाला नहीं है। कितना ज़ोर है उसमें ! देखती हैं रचना का पौरुष ?—

जग उठेगी तू हमारे अश्रु-सर में,
और चीन्हेगी स्वयं को उस प्रहर में
छिन्न होंगी शृंखलाएं, वन्धनों की डोर
मुक्ति देकर आज तुमको मुक्त हो मन मोर।

ऐसी तान आपको नामधारी लेखकों से नहीं मिल सकती; यह सूर्यमण्डल से आनेवाली आग की झड़ी है। यह केवल 'लिरिक' (गीति-काव्य) नहीं है, यह निष्ठुर जीवनतत्त्व है।"

लावण्य के मुंह की ओर एकटक देखता हुआ बोला :

"हे अपरिचित !
दिन गया, सन्ध्या हुई, सब समय उड़ता जा रहा है।
वन्धनों से युक्त जीवन-दीप वुझता जा रहा है।
तोड़ दें ये जीर्ण वन्धन और भय को छोड़ दें हम।
आ, तुझे पहचानकर मन प्राण अपना जोड़ लें हम।
और सपना सार्थक हो जाय मेरा हे अपरिचित !"

कविता खत्म भी न हो पाई थी कि अमित ने अपने हाथ में लावण्य का हाथ लेकर दवा दिया। लावण्य ने अपना हाथ छुड़ाया नहीं। उसने अमित के मुंह की ओर देखा पर वोली कुछ नहीं।

इसके वाद किसीको कोई वात कहने की आवश्यकता ही नहीं रही। लावण्य घड़ी की ओर देखना भी भूल गई।

७

ब्याह की बातचीत

अमित योगमाया के पास जाकर बोला, "मौसीजी, घटकई[1] करने आया हूं। विदा के क्षण कृपणता न कीजिएगा।"

"पसन्द आ जाए तब तो। पहले नाम-धाम विवरण तो बोलो।"

अमित बोला, "नाम से तो पात्र का मूल्य नहीं मालूम हो सकता।"

"यदि ऐसा है तो मैं समझती हूं घटक की विदाई के हिसाब में से कुछ कमी करनी पड़ेगी।"

"यह तो आप अन्याय की बात कर रही हैं। जिनका नाम बड़ा होता है उनकी दुनिया घर के अन्दर बहुत थोड़ी, बहुत छोटी होती है; ज़्यादातर बाहर ही होती है। घर का मान रखने की अपेक्षा बाहर का मान रखने में उनका अधिक समय जाता है। ऐसे आदमी का बहुत ही थोड़ा अंश स्त्री के हिस्से में आता है। पूरे विवाह के लिए इतना यथेष्ट नहीं। नामी आदमी का विवाह स्वल्प-विवाह होता है, बहु-विवाह के समान ही गर्हित।"

"अच्छा नाम की बात हटाओ, रूप ?"

"उसे तो बताने की इच्छा नहीं होती, क्योंकि कहीं अत्युक्ति न कर बैठूं।"

"मालूम पड़ता है अत्युक्ति के ज़ोर से ही उसे अपना बाज़ार चलाना है।"

"पात्र—वर—के चुनाव के समय केवल दो बातों पर ध्यान देना चाहिए। नाम के लिए वर कहीं घर को न छोड़ जाए और रूप में कहीं लड़की से आगे न बढ़ जाए।"

"अच्छा नाम-रूप रहने दो, बाकी और ?"

"बाकी जो कुछ रहा उसे सब तरफ से देखने पर ठीक कहा जा सकता है। कम से कम वह आदमी अपदार्थ तो नहीं है।"

---

१. बंगाल में विवाह ठीक-ठाक करने का काम जो करते हैं उन्हें घटक और उनके कार्य को घटकालि या घटकई कहा जाता है।

"बुद्धि ?"

"उसमें इतनी बुद्धि है कि लोग उसे बुद्धिमान समझने के भ्रम में पड़ जाएं।"

"विद्या ?"

"स्वयं न्यूटन के समान। वह जानता है कि ज्ञान-समुद्र के तट पर उसने सिर्फ कंकर चुने हैं, किन्तु न्यूटन के समान वह साहस करके इसे कह नहीं सकता, इस भय से कि लोग विश्वास न कर बैठें।"

"पात्र की योग्यता की सूची तो छोटी ही मालूम पड़ती है।"

"अन्नपूर्णा की पूर्णता प्रकट करने के लिए ही तो शिव अपने को भिखारी-रूप में कबूल करते हैं; इसमें कोई शर्म नहीं।"

"यदि ऐसा है तो परिचय ज़रा और साफ-साफ बताओ।"

"जाना-सुना घर है और पात्र का नाम है अमितकुमार राय। हंस क्यों रही हैं मौसीजी ? क्या आप मेरी बात को मज़ाक समझ रही हैं ?"

"हां, वह भय भी मन में है बेटा कि कहीं अन्त में जाकर यह बात मज़ाक न हो जाए।"

"यह सन्देह तो पात्र पर दोषारोप है।"

"बेटा, घर-गृहस्थी को हंसकर हलका किए रखना कुछ कम क्षमता का काम नहीं है।"

"मौसी, वह क्षमता तो देवताओं में है। इसीलिए वे विवाह के अयोग्य होते हैं। दमयन्ती ने इस बात को समझ लिया था।"

"मेरी लावण्य क्या सचमुच तुम्हें पसन्द आ गई है ?"

"किस तरह की परीक्षा चाहती हैं, बोलिए।"

"एकमात्र परीक्षा यही है कि तुम निश्चित रूप से इसका पता लगा लो कि लावण्य तुम्हारे ही हाथ में है।"

"इस बात का मतलब ज़रा खोलकर समझा दीजिए।"

"जो रत्न रास्ते में पड़ा हुआ मिल गया है, उसका असली मूल्य जो जानता है उसीको मैं जौहरी मानती हूं।"

"मौसीजी, आप बात को बहुत सूक्ष्म किए दे रही हैं। लगता है जैसे एक छोटी गल्प—कहानी—की साइकोलोजी (मनोविज्ञान) पर शान चढ़ा रही हों। किन्तु बात असल में बड़ी है—दुनिया के नियम से

एक भद्र पुरुष एक भद्र रमणी से विवाह करने के लिए पागल हो रहा है। दोष-गुण में लड़का कामचलाऊ है। लड़की के विषय में तो कुछ कहना ही व्यर्थ है। ऐसी अवस्था में साधारण मौसियों का दिल तो स्वभाववश खुश होकर तुरन्त आनन्द-मोदक फोड़ना शुरू कर देता है।"

"भय नहीं, बेटा, लड्डू—मोदक—तो हाथ आ चुका है। समझ लो कि लावण्य को तुम पा चुके। उसके बाद भी, पा चुकने के अनन्तर भी, यदि तुम्हारी उसे पाने की इच्छा प्रबल बनी रहे तभी समझूंगी कि तुम लावण्य जैसी लड़की को ब्याहने योग्य हो।"

"मैं अपने को ही आधुनिक समझता था, पर आपने तो मुझे भी स्तब्ध कर दिया।"

"आधुनिक के क्या लक्षण देखे?"

"देखता हूं कि बीसवीं शताब्दी की मौसियां ब्याह करने में भी डरती हैं।"

"इसका कारण यह है कि पिछली सदियों की मौसियां जिनका ब्याह रचाती थीं वे खेल की गुड़ियां होती थीं। अब जो ब्याह की उम्मीदवार होती हैं वे मौसियों का खेल का शौक पूरा करने की तरफ ध्यान ही नहीं देतीं।"

"आपको कोई भय नहीं है। पाकर पाना खत्म नहीं होता बल्कि उसकी आकांक्षा बढ़ती ही जाती है, लावण्य से ब्याह करके इसी बात को प्रमाणित करने के लिए ही अमृत राय इस दुनिया में आया है। यदि ऐसा न होता तो मेरी मोटरगाड़ी जड़ वस्तु होने पर भी असमय और अस्थान में ऐसी अद्भुत घटना क्यों कर डालती?"

"बेटा, विवाह योग्य वयस का सुर अभी तक तुम्हारी बातचीत में नहीं आ पाया है। कहीं अन्त में यह सब एक बाल्य-विवाह होकर ही न रह जाए।"

"मौसी, मेरे मन की एक अपनी स्पेसिफिक ग्रेविटी (आपेक्षिक गुरुत्व) है, उसीके प्रभाव से हमारे हृदय की गंभीर बातें भी मुंह तक आते-आते बिलकुल हलकी हो जाती हैं, परन्तु इसके कारण उनका वज़न कम नहीं होता।"

योगमाया खाने-पीने का इन्तज़ाम करने चली गई। अमित इस-

उस कमरे में घूमने-फिरने लगा। परन्तु दर्शन करने योग्य कोई दिखाई नहीं पड़ा। भेंट हो गई यतिशंकर से। ख्याल आ गया कि आज उसे ऐण्टानी क्लियोपेट्रा पढ़ाने की बात थी। अमित के मुख का भाव देखते ही यति समझ गया कि इस प्राणी पर दया करके आज छुट्टी ले लेना ही उसका कर्तव्य है। इससे उसने कहा, "अमित दा, अगर बुरा न मानें तो मैं आज की छुट्टी चाहता हूं; ऊपर शिलांग घूमने जाऊंगा।"

अमित ने पुलकित होकर कहा, "पढ़ने के समय जो छुट्टी लेना नहीं जानते वे पढ़ते तो हैं पर पढ़ाई को हज़म नहीं करते। तुम्हारे छुट्टी मांगने पर मैं कुछ ख्याल करूंगा, ऐसा असम्भव भय कैसे हुआ ?"

"कल रविवार की छुट्टी तो है ही, कहीं आप न सोचें..."

"मेरी बुद्धि स्कूल मास्टरीवाली नहीं है। मैं घोषित छुट्टियों को छुट्टी ही नहीं मानता। जो छुट्टी नियमित है उसका भोग करना वैसा ही है जैसा बांधे हुए पशु का शिकार करना। उससे छुट्टी का रस ही फीका हो जाता है।"

हठात् जिस उत्साह से अमितकुमार छुट्टी-तत्त्व की व्याख्या करने को उद्यत हुआ उसके मूल कारण का अनुमान कर यति को बड़ा मजा आया। उसने कहा, "कई दिनों से छुट्टी-तत्त्व के बारे में आपके दिमाग में नये-नये भाव उठते रहे हैं। उस दिन भी आपने मुझे उपदेश दिया था। इस तरह कुछ दिन और चलता रहा तो छुट्टी लेने में मैं खूब पक्का हो जाऊंगा।"

"उस दिन क्या उपदेश दिया था ?"

"कहा था कि अकर्तव्य बुद्धि मनुष्य का एक बड़ा भारी गुण है। इसलिए उसकी पुकार सुन पड़ने पर ज़रा भी देर करना उचित नहीं। इतना कहकर और किताब बन्द करके आप तुरन्त चले गए थे। मैंने ध्यान नहीं दिया कि बाहर किस अकर्तव्य का आविर्भाव हुआ था।"

यति की अवस्था अभी बीस के अन्दर है। अमित के मन में जो चंचल हिलोर उठ रही है उसके मन से भी उसका स्पर्श होता है। अभी तक उसने लावण्य की गिनती सिर्फ शिक्षक जाति के अन्दर कर रखी थी, परन्तु आज अमित की चालाकी से ही समझ गया कि वह भी नारी जाति की है।

अमित हंसकर बोला, " 'काम सामने आते ही प्रस्तुत हो जाना चाहिए,' इस उपदेश का बाज़ार-भाव, अकबरी मुहर की तरह बढ़ा हुआ है। परन्तु उसकी दूसरी तरफ यह भी खुदा रहना चाहिए—'अकाज उपस्थित होते ही उसे भी वीर की भांति स्वीकार कर लेना चाहिए।' "

"जी हां, आपकी वीरता का परिचय तो आजकल अक्सर ही मिला करता है।"

यति की पीठ ठोंकते हुए अमित ने कहा, "ज़रूरी काम-काज को एक ही बार बलि चढ़ा देनेवाली पवित्र अष्टमी तिथि जब तुम्हारे जीवन के पत्रे में आए तब देवी की पूजा में देर न करना। भाई, उसके बाद विजयादशमी आने में देर नहीं लगती।"

यति चला गया। इधर अकर्तव्य-बुद्धि जाग पड़ी थी परन्तु जिसके सहारे अकार्य दिखाई पड़ता है, वह तो कहीं दिखाई ही नहीं दे रही है। तब अमित घर से बाहर निकल पड़ा।

फूलों से भरी हुई गुलाब की लता है; एक ओर ढेर की ढेर सूर्यमुखी लगी है और एक तरफ है चौकोर काठ के टब में चन्द्रमल्लिका। ढालू लान के ऊपर की तरफ एक बड़ा यूल्किप्टस का वृक्ष है। उसके तने से पीठ लगाए और पैर फैलाए बैठी है लावण्य। शरीर पर धूमिल रंग का अलवान है। पांव पर प्रभात काल की नर्म धूप पड़ रही है। गोद में रूमाल के ऊपर रोटी के कुछ टुकड़े और टूटे अखरोट हैं। आज वह सुबह का समय जीव-सेवा में बिताने के लिए आई थी किन्तु उसे भूल ही गई। अमित उसके पास जाकर खड़ा हो गया। लावण्य ने सिर उठाकर उसकी ओर देखा पर बोली कुछ नहीं, चुप रही। परन्तु एक मृदु मुस्कान उसके मुंह पर छा गई। अमित उसके सामने मुंह करके बैठ गया और बोला, "खुशखबरी है। मौसीजी की स्वीकृति मिल गई है।"

लावण्य ने इसका कोई जवाब न देकर थोड़ी ही दूर पर लगे एक फलहीन पीच के पेड़ की तरफ एक टूटा हुआ अखरोट फेंक दिया। देखते ही देखते एक गिलहरी उतर आई। लावण्य की मुट्ठी से भिक्षा पानेवालों में से एक यह जीव भी है।

अमित ने कहा, "यदि एतराज न हो तो मैं तुम्हारा नाम छांट-कर छोटा कर देना चाहूंगा।"

"कर दीजिए।"

"तुम्हें वन्य कहकर बुलाया करूंगा।"

"वन्य!"

"नहीं, नहीं, इससे तो तुम्हारा नाम बिगड़ गया। इस तरह का नाम तो मुझे ही शोभा देगा। मैं तुम्हें पुकारा करूंगा वन्या। क्या कहती हो?"

"वही पुकारना, पर अपनी मौसीजी के सामने नहीं।"

"कभी नहीं। ये सब नाम तो बीजमंत्र की भांति किसीके सामने प्रकट करने के लिए नहीं हैं। यह तो मेरे मुंह और तुम्हारे कान तक ही रहेगा।"

"अच्छी बात है।"

"मेरे लिए भी तो इसी तरह के किसी गैरसरकारी नाम की जरूरत है। ब्रह्मपुत्र कैसा रहेगा! वन्या (बाढ़) अकस्मात् आई और उसके कूल को बहा ले गई।"

"पर यह नाम सदा बुलाने के लिए वज़न में भारी पड़ेगा।"

"ठीक कहती हो। पुकारते समय वज़न उठाने के लिए कुली बुलाना पड़ेगा। तब तुम्हीं कोई नाम रख दो। वह तुम्हारी ही सृष्टि हो।"

"अच्छा। मैं भी तुम्हारा नाम छांटकर छोटा कर दूंगी। तुम्हें पुकारा करूंगी—मीता।"

"वाह, क्या चमत्कार किया है तुमने! पदावली में उसीका एक दूसरा नाम है पीतम। वन्या, सोचता हूं कि न हो, इसी नाम से तुम मुझे सबके सामने भी बुलाया करो तो क्या हर्ज है?"

"खतरा है कि कहीं एक कान का धन पांच कानों में जाकर सस्ता न हो जाए!"

"बात तो मिथ्या नहीं है। दो कानों में जो एक है, पांच कानों में वही भग्नांश है, टूटा हुआ टुकड़ा है। वन्या!"

"क्या है मीता?"

"तुम्हारे नाम पर यदि कविता लिखूं तो कौन-सा तुक लगाऊंगा, जानती हो?—अनन्या।"

"उससे क्या अर्थ निकलेगा ?"

"अर्थ निकलेगा कि तुम जो हो बस वही हो, और कुछ नहीं हो।"

"यह तो कोई विशेष आश्चर्य की बात नहीं हुई।"

"कहती क्या हो, यह तो बड़े आश्चर्य की बात है। दैवयोग से ही एकाध ऐसे प्राणी दिखाई दे जाते हैं जिन्हें देखते ही चौंककर कहना पड़ता है कि यह आदमी तो अपने ही जैसा है; पांचों जनों जैसा नहीं है। इसी बात को मैं कविता में यों कहूंगा :

हे मेरी वन्या तुम हो अनन्या,
अपने रूप में आप हो धन्या।"

"क्या तुम कविता लिखा करोगे ?"

"अवश्य लिखूंगा। किसका बूता है जो उसकी गति को रोक सके।"

"इस तरह मरना क्यों चाहते हो ?"

"कारण बताता हूं। जैसे नींद न आने पर करवट बदलनी पड़ती है उसी प्रकार कल रात ढाई बजे तक 'आक्सफोर्ड बुक ऑफ वर्सेज़'[१] के पन्ने उलटता रहा। खोजने पर भी उसमें प्रेम करने के विषय में कोई कविता न मिली, पहले समय में तो वे आ-आकर मेरा पांव चूमती थीं। स्पष्ट ही समझ गया कि मैं लिखूंगा, इसीके लिए सारी दुनिया प्रतीक्षा कर रही है।"

इतना कहकर उसने लावण्य का बायां हाथ अपने दोनों हाथों के बीच दबा लिया। फिर बोला, "हाथ तो जुड़ गए, अब कलम किस तरह पकड़ूंगा। तुक का सबसे अच्छा मेल है हाथोंहाथ मिल जाना। तुम्हारी उंगलियां मेरी उंगलियों से मिलकर जिस प्रकार बात कर रही हैं उस प्रकार सहज भाव से कोई कवि कुछ लिख ही नहीं पाया।"

"तुम्हें तो सहज में कुछ पसन्द ही नहीं आता, इसीलिए तुमसे इतना डर लगता है मीता।"

"किन्तु मेरी बात ज़रा समझने की कोशिश तो करो। रामचन्द्र ने सीता के सत्य की परीक्षा बाहरी आग से करनी चाही थी, इसीलिए सीता को खो बैठे। कविता के सत्य की परीक्षा जिस आग से होती है

---

१. अंग्रेज़ी का एक काव्य-संकलन

वह है अन्तर की, भीतर की, हृदय की आग। जिसके मन में वह आग नहीं है वह क्या लेकर जांचेगा उसे ? उसे तो पांच आदमियों के मुंह से सुनी हुई बात-भर मान लेनी पड़ती है। वह प्रायः दुर्मुख की बात होती है। मेरे मन में आज आग जल रही है। उस आग के भीतर डालकर मैं अपनी पुरानी सब पढ़ाई को फिर से पढ़ रहा हूं। उसमें से बहुत थोड़ा ही टिक पाएगा, सब धू-धू करके राख हुआ जा रहा है। कवियों के झुंड में खड़े होकर आज मुझे बोलना ही पड़ा कि तुम लोग इतना चिचियाकर बात न करो, जो बात ठीक हो उसे धीरे-धीरे कहो—

For God's sake, hold your tongue
and let me love!"

बड़ी देर तक दोनों प्राणी चुपचाप बैठे रहे। उसके बाद एक बार लावण्य का हाथ उठाकर अमित ने अपने मुंह पर फिरा लिया। बोला, "सोच देखो, बन्या! आज इस प्रभात में, इसी मुहूर्त में समस्त पृथ्वी के अनगिनत लोगों ने इच्छित वस्तु की कामना की होगी और उनमें से कितने थोड़े लोगों ने उसे पाया होगा। मैं उन्हीं थोड़े-से लोगों में से एक हूं। सारी दुनिया में एक तुम्हीं उस सौभाग्यशाली पुरुष को देख पाईं, शिलांग पहाड़ के कोने में, इस यूकिलप्टस पेड़ के नीचे। पृथ्वी की परम आश्चर्यकारी बातें बड़ी लजालु होती हैं; वे आंखों में पड़ना ही नहीं चाहतीं। फिर तुम्हारा यह तारिणी तलापत्र कलकत्ता की गोलदिग्घी मुहल्ले से लेकर नोआखाली-चटगांव[1] तक चीत्कारपूर्वक शून्य की ओर घूंसा तान-तानकर वंक (टेढ़ी) राजनीति की कोरी आवाज़ फैला आया; वही दुर्दान्त निरर्थक समाचार बंगाल देश का सर्वप्रधान समाचार हो उठा। कौन जाने कदाचित् यही अच्छा हो।"

"क्या अच्छा हो ?"

"अच्छा यही कि संसार की असल चीज़ें हाट-बाज़ार में ही चलती-फिरती रहती हैं फिर भी निरर्थक आदमियों की आंखों की ठोकर खाकर नहीं मरतीं। उनकी गम्भीर जानकारी जगत् के हृदय की नाड़ी-

---

१. बंगाल (अब पूर्वी पाकिस्तान) के नगर

नाड़ी में है। अच्छा वन्या, मैं तो बकता ही चला जा रहा हूं, तुम चुप बैठी क्या सोच रही हो, कुछ बताओ तो।"

लावण्य आंखें नीची किए चुप बैठी रही, उसने कोई जवाब नहीं दिया।

अमित बोला, "तुम्हारा यह चुप बैठ रहना ऐसा लगता है मानो उसने बिना मासिक वेतन चुकाए मेरी सब बातों को बर्खास्त कर दिया हो।"

लावण्य ने आंखें नीची किए हुए ही कहा, "मीता, तुम्हारी बात सुनकर मुझे डर लगता है।"

"डर किसका ?"

"तुम मुझसे न जाने क्या चाहते हो? मैं तुम्हें कितना कुछ दे पाऊंगी, यह सोच नहीं पाती हूं।"

"कुछ सोचे-विचारे बिना ही तुम दे सकती हो, इसीमें तो तुम्हारे दान का महत्त्व है।"

"तुमने जब कहा कि मालकिन मां ने अपनी स्वीकृति दे दी है तब मेरा मन न जाने कैसा हो उठा। मन में आया कि इस बार मेरे पकड़ लिए जाने के दिन आ गए।"

"पकड़ाई-धराई तो देनी ही होगी।"

"मीता, तुम्हारी रुचि, तुम्हारी बुद्धि मुझसे बहुत ऊपर है। तुम्हारे साथ रास्ता चलने पर एक दिन मैं तुमसे बहुत दूर पिछड़ जाऊंगी, तब तुम लौटकर मुझे पुकारोगे भी नहीं। उस दिन मैं तुम्हें ज़रा भी दोष न दूंगी। नहीं, नहीं, कुछ बोलो मत, पहले मेरी बात सुन लो। विनती के साथ कहती हूं कि मेरे साथ ब्याह करने की इच्छा न करो। ब्याह करके फिर गांठ खोलने की चेष्टा करोगे तो उलझन और बढ़ जाएगी। तुम्हारे पास से मैंने जो कुछ पाया है वही मेरे लिए यथेष्ट है; वह जीवन के अन्त तक चलता रहेगा। किन्तु तुम अपने को भ्रमित न करो।"

"वन्या, तुम आज के दिन की उदारता में कल के दिन की कृपणता की आशंका क्यों कर रही हो ?"

"मीता, तुम्हींने मुझे सत्य बोलने का बल दिया है। आज तुमसे जो कुछ कह रही हूं, उसे तुम भी भीतर-भीतर जानते हो। मानना

इसलिए नहीं चाहते कि जो रस इस समय भोग रहे हो उसमें कोई खटका न पैदा हो जाए। तुम तो संसार में, घर-गृहस्थी में फंसकर रहनेवाले प्राणी नहीं हो, सिर्फ रुचि की तृष्णा मिटाने के लिए फिरा करते हो; इसीलिए विविध साहित्यों में तुम विहार किया करते हो। मेरे पास भी तुम इसीलिए आए हो। ठीक बात कह रही हूं न? विवाह को तुम मन में समझते हो और सदा कहा भी करते हो 'वल्गर' (भद्दा, कुरुचिपूर्ण)। वह बड़ा रेस्पेक्टेबल (सम्मानित) है; वह शास्त्रों की दुहाई के सहारे उन सब विजयी लोगों की पोषित वस्तु है जो सम्पत्ति और सहधर्मिणी को एक कोटि में मिलाकर खूब मोटे गादी-तकियों के बीच जीवन बिताते हैं।"

"बन्या! तुम आश्चर्यजनक मृदु सुर में आश्चर्यजनक रूप से कठोर बात कह सकती हो।"

"मीता, काश प्रेम के बल से मैं चिर दिन ऐसी ही कठोर रह सकूं, और तुम्हें भुलाए रखने के लिए कोई धोखा न दूं। तुम जैसे आज हो वैसे ही रहो; तुम्हारी रुचि में मैं जितनी अच्छी लगूं बस उतनी ही लगती रहूं। किन्तु तुम ज़रा भी ज़िम्मेदारी न लेना; इसीसे मैं खुश रहूंगी।"

"बन्या, अब मुझे भी तो अपनी बात कहने दो। कैसे आश्चर्यजनक रूप से तुमने मेरे चरित्र की व्याख्या की है! उसे लेकर मैं तुमसे बहस—कटाकटी—नहीं करूंगा, किन्तु एक जगह तुम भूल कर रही हो। मनुष्य का चरित्र नाम की वस्तु भी चलनेवाली है—कोई एक जगह ठहरी रहनेवाली नहीं है। घर की पालतू अवस्था में उसका एक प्रकार की सांकल से बंधा स्थावर—अचल—परिचय है। उसके बाद जब एक दिन भाग्य अपने आकस्मिक आघात से उस सांकल को काट देता है और वह अरण्य की ओर, निर्जन जंगल की ओर भागता है तब उसकी सूरत दूसरी हो जाती है।"

"आज तुम इन दोनों में से क्या हो?"

"जो मेरे सदा से चले आए जीवन से मेल नहीं खाता आज मैं वही हूं। इसके पहले समाज द्वारा निकाली नहर किनारे बने घाटों पर रुचि की लालटेन की ज्योति में अनेक लड़कियों से मेरा परिचय हुआ है, पर उनमें केवल देखना-सुनना-भर हुआ है, जानना-पहचानना नहीं हुआ।

वन्या, तुम स्वयं बताओ कि क्या तुम्हारे साथ भी मेरा ऐसा ही परिचय है ?"

लावण्य चुप रही।

अमित बोला, "बाहर ही बाहर दो नक्षत्र एक-दूसरे को प्रणाम करते हुए, एक-दूसरे की प्रदक्षिणा करते हुए चलते हैं, यह कायदा तो बड़ा अच्छा है, निरापद भी हैं पर इसमें उनकी रुचि का खिचाव, आकर्षण-मात्र हैं, मर्म का, हृदय का मेल नहीं। किन्तु एकाएक यदि मृत्यु का धक्का लग जाता है तो दोनों लालटेनें बुझ जाती हैं और दोनों में एक हो उठने की आग जल उठती है। उस आग के जल उठने से अमित राय बदल गया है। मनुष्य का इतिहास ही ऐसा है। उसे देखने से लगता है कि धारावाहिक है, बराबर एक ही धारा आगे बढ़ती चली गई है, किन्तु असल में वह आकस्मिक की गूंथी हुई माला है। सृष्टि की गति उसी आकस्मिक के धक्के खाती भीड़-भाड़ के बीच से, एक युग से दूसरे युग की ओर चलती रहती है, झपताल की लय की तरह। वन्या, तुमने मेरा ताल बदल दिया हैं—उसी ताल में तो तुम्हारे सुर के साथ मेरा सुर मिल गया है।"

लावण्य की पलकें भीग गईं। इतने पर भी वह यह बात सोचे बिना न रह सकी कि अमित के मन की गठन साहित्यिक है; प्रत्येक जानकारी में उसके मुंह से बातचीत की धारा फूट निकलती है। यही तो उसकी ज़िन्दगी की फसल है; इसीमें वह आनन्द पाता है। मेरा प्रयोजन भी उसे इसीलिए है। ये सब बातें उसके मन में बरफ बनकर जमी हुई हैं, उसे स्वयं इस भाव का बोध होता है, किन्तु आवाज़ सुन नहीं पाता। मुझे अपनी गर्मी से उसे, उस बरफ को, गलाकर बहा देना होगा।

दोनों बड़ी देर तक चुपचाप बैठे रहे। अकस्मात् लावण्य ने पूछा, "अच्छा बताओ मीता, क्या तुम्हारे मन में नहीं आता कि जिस दिन ताजमहल बनकर बिलकुल तैयार हो गया था उस दिन मुमताज़ की मृत्यु पर शाहजहां को खुशी हुई थी। अपने स्वप्न को अमर करने के लिए उन्हें इस मृत्यु की आवश्यकता थी। यह मृत्यु ही मुमताज का सबसे बड़ा प्रेम का दान था। ताजमहल में शाहजहां का शोक प्रकट नहीं हुआ बल्कि उसके आनन्द को रूप मिला है।"

अमित ने कहा, "अपनी वातों से तुम क्षण-क्षण में मुझे चौंका देती हो। तुम निश्चय ही कवि हो।"

"मैं कवि होना नहीं चाहती।"

"क्यों नहीं चाहतीं ?"

"जीवन के उत्ताप से केवल वातों का दीया जलाने की ओर मेरा मन नहीं जाता। दुनिया में जिन्हें उत्सव की सभा सजाने का हुक्म मिला है, उन्हींके लिए वातें करना अच्छा हैं। मेरे जीवन का ताप जीवन के कार्यों के लिए है।"

"वन्या, तुम वात को अस्वीकार कर रही हो! तुम नहीं जानतीं कि तुम्हारी वातें मुझे किस तरह जगा-जगा देती हैं। तुम कैसे जान पाओगी कि तुम क्या कह रही हो और उस कहने का अर्थ क्या है? अव देखता हूं कि फिर निवारण चक्रवर्ती को पुकारना पड़ेगा। उसका नाम सुनते-सुनते तुम विरक्त हो उठी होगी। किन्तु वोलो मैं क्या करूं, वह वेचारा मेरे मन की वातों का भण्डारी है। निवारण अभी भी अपने लिए पुराना नहीं हुआ है—वह हर वार जो कविता लिखता है, वही मानो उसकी पहली कविता होती है। उस दिन उसकी कापी उलटते हुए कुछ समय पहले लिखी हुई उसकी एक रचना मिल गई। कविता झरने के ऊपर है। न जाने कैसे तो उसे खवर लग गई कि शिलांग पहाड़ पर आकर मुझे अपना झरना मिल गया है। वह लिखता है :

झरना, तेरी स्फटिक-शुभ्र जल की जो धारा,
उसमें अपना रूप देखते हैं रवि-तारा।

मैं यदि स्वयं लिखता तो भी तुम्हारा इससे अधिक स्पष्ट वर्णन नहीं कर पाता। तुम्हारे मन में एक ऐसी स्वच्छता है जिसमें आकाश का सम्पूर्ण प्रकाश सहज ही प्रतिविम्वित हो उठता है। तुम्हारे सव कुछ के वीच फले हुए उस प्रकाश को मैं देख रहा हूं। तुम्हारे मुख पर, तुम्हारी हंसी में, तुम्हारी वातचीत में, तुम्हारे स्थिर होकर इस प्रकार वैठने में, तुम्हारे रास्ते से चलने में सर्वत्र मैं उस प्रकाश को देखता हूं।

तेरी धारा के कूलों पर हरित हमारी छाया,
दुलराओ तुम और खेलाओ दे निज ममता-माया।

इस छाया के साथ मिला दो हंसकर कल-स्वर अपना,
दे दो अपनी शाश्वत वाणी, पूरा हो मम सपना।

तुम झरना हो। यही नहीं कि केवल जीवन-स्रोत में चल रही हो, तुम्हारे चलने के साथ-साथ तुम्हारा बोलना भी चल रहा है। संसार के जिन सब कठिन-अचल पत्थरों के ऊपर से होकर तुम चलती हो वे भी तुम्हारे संघात से सुर में बज उठते हैं।

मेरी छाया और तुम्हारी मुस्कानों का सुन्दर मेला
पाकर जो छवि विकसित होती उसमें मेरा प्राण अकेला।
कवि को आविर्भूत कर रहा पद-पद में आलोक तुम्हारा,
बोल उठी प्राणों की भाषा पाकर मंजुल-स्निग्ध सहारा।
निर्झरिणी, मेरी वाणी तुममें साकार हुई जाती है,
तव प्रवाह में मन जाग्रत तू रूपाधार हुई जाती है।
आज तुम्हें पाकर मैं अपने को पहचान सका हूं प्यारी,
तुममें ही अपने को देखो, बीत गई दुश्चिन्ता सारी।"

लावण्य ने म्लान हंसी हंसकर कहा, "मुझमें जितना भी प्रकाश हो, ध्वनि हो, तुम्हारी छाया तो तब भी छाया ही रहेगी; उस छाया को पकड़कर मैं रख न सकूंगी।"

अमित बोला, "किन्तु एक न एक दिन तुम देखोगी कि चाहे और कुछ न रह गया हो पर मेरा वाणी-रूप तो रह ही गया है।"

लावण्य हंसकर बोली, "कहां? निवारण चक्रवर्ती की कापी में?"

"आश्चर्य की कोई बात नहीं। मेरे मन के भीतरी स्तर में जो धारा बह रही है, देखती हो वह निवारण के फव्वारे से किस प्रकार निकलने लगती है?"

"ऐसा है तब तो किसी दिन केवल निवारण चक्रवर्ती के फव्वारे में ही तुम्हारा मन पाया जा सकेगा, और कहीं नहीं।"

इसी समय रसोई से आकर एक आदमी कह गया—खाना तैयार है।

अमित चलते-चलते सोचने लगा कि लावण्य बुद्धि के आलोक से सब कुछ स्पष्ट जान लेना चाहती है। मनुष्य स्वभावतः जहां अपने को भुलाए रखने की इच्छा करता है, वहां भी लावण्य अपने को भुलाए

नहीं रख सकती। उसने जो वात कही उसका प्रतिवाद मैं नहीं कर सका। अन्तरात्मा की गंभीर उपलब्धि को वाहर व्यक्त करना पड़ता ही है; हां कोई उसे जीवन में व्यक्त करता है और कोई उसे अपनी रचना में व्यक्त करता है। जीवन को स्पर्श करते हुए भी उससे हटकर, जैसे नदी वरावर तट को स्पर्श करती, किन्तु उससे हटती हुई चलती है। मैं क्या केवल रचना का स्रोत लेकर जीवन से हटता जाऊंगा? क्या यहीं स्त्री-पुरुष में अन्तर है? पुरुष अपनी समस्त शक्ति को सार्थक करता है सृष्टि करने में। इस सृष्टि को आगे वढ़ाने के लिए ही वह पग-पग पर अपने को भूलता चलता है। स्त्री अपनी सारी शक्ति रक्षा करने में, पालन करने में लगाती है; पुरानों की रक्षा करने के लिए ही नई सृष्टि के काम में वह वाधा देती है। रक्षा के प्रति सृष्टि निष्ठुर है; सृष्टि के प्रति रक्षा विघ्न है। ऐसा क्यों हुआ? कहीं न कहीं तो वे परस्पर टकराएंगी ही। जहां वहुत ज़्यादा मेल-प्रेम होता है, वहीं प्रवल विरुद्धता भी रहती है। तभी तो सोचता हूं कि सवसे वड़ा हमारा जो पावना है वह मिलन नहीं, मुक्ति है।

इन वातों को सोचने में अमित को पीड़ा हुई, किन्तु उसका मन उन्हें अस्वीकार न कर सका।

८

लावण्य का तर्क

योगमाया वोलीं, "वेटी लावण्य, तुम ठीक-ठीक समझ रही हो न?"

"ठीक समझ लिया है मां!"

"अमित वड़ा चंचल है, यह तो मैं भी मानती हूं। इसीलिए उसे इतना स्नेह करती हूं। देखो न, वह कितना अस्त-व्यस्त है। जैसे उसके हाथ से सव कुछ गिरा जा रहा हो।"

लावण्य ज़रा हंसकर वोली, "उन्हें अगर सव कुछ पकड़कर रखना पड़ता, हाथ से सव कुछ खिसककर गिरता न रहता, तभी उनके लिए

विपद की बात होती। उनका नियम है कि या तो वे पाकर भी न पाएंगे या पाकर भी खो देंगे। जिसे पाया है, उसे संजोकर रखना भी होगा, यह बात उनकी प्रकृति से मेल नहीं खाती।"

"वेटी, सच कहती हूं, उसका लड़कपन मुझे वड़ा भला लगता है।"

"यह तो मां का धर्म ही है। लड़कपन की जो कुछ भी ज़िम्मेदारी है, सब मां की है, वच्चे के लिए जो कुछ है, सब खेल है। पर मुझे क्यों कह रही हो कि ज़िम्मेदारी लेनी पड़ेगी, नहीं तो वे उसमें दब जाएंगे ?"

"देखती नहीं है लावण्य कि उसका ऐसा दुरन्त मन आजकल कितना ठण्डा हो गया है। देखकर मुझे वड़ी माया लगती है। चाहे कुछ कहो, वह तुम्हें प्यार करता है।"

"करते तो हैं।"

"तव और क्या चिन्ता है ?"

"स्वामिनी मां, उनका जो भी स्वभाव है, उसपर मैं ज़रा भी अत्याचार करना नहीं चाहती।"

"लावण्य, मैं तो यही जानती हूं कि प्रेम कुछ न कुछ अत्याचार चाहता है, अत्याचार करता भी है।"

"मां, उस अत्याचार का क्षेत्र है, किन्तु स्वभाव के ऊपर पीड़न सहन नहीं होता। साहित्य में प्रेम की जितनी पुस्तकें पढ़ती गई हूं, उतनी ही यह बात मेरे मन में आई है कि प्रेम की ट्रेजेडी वहीं घटित होती है जहां एक-दूसरे को स्वतन्त्र मानकर मनुष्य सन्तुष्ट होना नहीं चाहता, जहां अपनी इच्छा को ही दूसरे की इच्छा वना देने का ज़ुल्म होता है—जहां मन में आता है कि अपने मन के अनुकूल वदलकर दूसरे की रचना कर डालें।"

"वह तो वेटी, दो आदमियों के मिलकर नया संसार, नई गृहस्थी वनाने में अगर एक-दूसरे की कुछ न कुछ सृष्टि नहीं करते, एक-दूसरे के निर्माण में भाग नहीं लेते तो चल ही नहीं सकता। जहां प्रेम है वहां वह सृष्टि सहज हो जाती है, जहां वह नहीं है वहां हथौड़ी पीटते जाकर वही होता है, जिसे तुम ट्रेजेडी कहती हो।"

"संसार—घर-गृहस्थी—चलाने के लिए ही जो आदमी वनाए गए हैं, उनकी वात छोड़ दें। वे तो मिट्टी के आदमी होते हैं; घर-गृहस्थी के

प्रतिदिन के दवाव में ही गढ़ उठते हैं। किन्तु जो विलकुल ही मिट्टी का आदमी नहीं है, वह अपनी स्वतन्त्रता किसी तरह भी छोड़ नहीं पाता। जो स्त्री इसे नहीं समझती वह जितना ही दावा करती है, उतनी ही वंचित होती है; जो पुरुष इस बात को नहीं समझता वह जितनी ही खींच-तान करता है, उतना ही असली मनुष्य को खो देता है। मेरा विश्वास है कि अधिकांश स्थानों पर हम जिसे पाना कहती हैं वह पाना और कुछ नहीं, वैसा ही होता है जैसे हथकड़ी हाथ को पाती है।"

"तुम क्या करना चाहती हो लावण्य ?"

"मैं व्याह करके उन्हें दुःख देना नहीं चाहती। विवाह सवके लिए नहीं है। मां, तुम इसे समझ लो कि जो संशयी होते हैं वे आदमी को थोड़ा-थोड़ा तोड़-तोड़कर उससे मनचाही वस्तु चुन लिया करते हैं, किंतु विवाह के फंदे में फंसकर तो स्त्री-पुरुष वहुत ज़्यादा निकट आ जाते हैं, वीच में ज़रा भी अन्तर नहीं रह जाता, तव विलकुल परिपूर्ण मनुष्य को लेकर कारवार करना पड़ता है, विलकुल ही पास रहकर। कोई भी अंश वहां एक-दूसरे से ढका नहीं रह सकता।"

"लावण्य, तू अपने को जानती नहीं। तुझे ग्रहण करने में कुछ भी तोड़ने-हटाने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी।"

"किन्तु वे तो मुझे नहीं चाहते। मैं जो साधारण मनुष्य हूं, घर की स्त्री हूं, उसे वे देख पाए हैं, मुझे तो ऐसा नहीं जान पड़ता। जव-जव मैंने उनके मन को स्पर्श किया है, तव-तव उनके मन से अविराम और अजस्र वातचीत की धारा फूटती है। उस वातचीत के द्वारा वे केवल मुझे गढ़ते चले गए हैं। उनका मन यदि क्लांत हो गया, थक गया, वात-चीत, कहानी यदि खत्म हो गई तो उस निःशब्दता के भीतर पकड़ जाएगी, यह नितान्त साधारण स्त्री—वह स्त्री जो उनकी अपनी सृष्टि नहीं है। व्याह कर लेने पर मनुष्य को ग्रहण कर लेना पड़ता है; फिर उसमें गढ़ने का, निर्माण करने का अवकाश ही नहीं रह जाता।"

"क्या तुझे ऐसा लगता है कि अमित तेरी जैसी लड़की को भी पूर्णतः ग्रहण न कर सकेगा ?"

"उनका स्वभाव वदल जाए तभी ऐसा कर सकेंगे। किन्तु वह वदले ही क्यों ? मैं तो ऐसा चाहती नहीं।"

"तू क्या चाहती है ?"

"जितने दिनों तक सम्भव होगा उनकी बातों के साथ, उनके मन के खेल के साथ विलीन होकर स्वप्न बनकर रहूंगी। और उसे स्वप्न भी क्यों कहूं ? वह तो मेरा एक विशेष जन्म है, एक विशेष रूप है, एक विशेष जगत् में वह सत्य होकर दिखाई पड़ा है। फिर भले ही वह उत्पत्तिकोष से बाहर निकली दो-चार दिन की रंगीन तितली ही क्यों न हो, उसमें दोष क्या है ? और ऐसी भी कोई बात नहीं है कि यह तितली, तितली होने के कारण संसार में किसी और सत्य से कुछ कम सत्य हो। इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता कि वह सूर्योदय के प्रकाश में दिखाई देकर सूर्यास्त के प्रकाश में मर जाए। सिर्फ इतना देखना चाहिए कि उतना समय व्यर्थ न चला जाए।"

"इतना तो समझ गई कि तुम अमित के लिए क्षणकालिक माया रूप में विराजमान हो। पर स्वयं तुम ? क्या तुम भी विवाह करना नहीं चाहतीं। क्या तुम्हारे लिए अमित भी माया है ?"

लावण्य चुप बैठी रही, उसने कोई जवाब नहीं दिया।

योगमाया ने कहा, "जब तुम तर्क करती हो तब मैं समझ जाती हूं कि तुम बहुत पुस्तकें पढ़ी हुई लड़की हो। तुम्हारी तरह मैं सोच नहीं सकती; बात भी नहीं कर सकती। इतना ही नहीं, हो सकता है काम का समय आने पर मैं इतनी सख्त भी न रह सकूं। किन्तु तर्क और विवाद की दरार में से भी तुम्हें देखा है बेटी। उस दिन की बात है, रात को बारह बज रहे होंगे; देखा, तुम्हारे कमरे की बत्ती जल रही है। वहां गई तो देखा कि तुम अपनी टेबल पर झुकी, दोनों हाथों के बीच अपना मुंह छिपाए रो रही हो। यह तो फिलासफी पढ़ी लड़की नहीं है। एक बार मन में आया, सान्त्वना देती चलूं; फिर सोचा, सभी लड़कियों को रोने के दिनों में रोने देना चाहिए, रुलाई को दबाने जाना व्यर्थ है। अच्छी तरह समझती हूं कि तुम सृष्टि करना नहीं चाहतीं, केवल प्रेम करना चाहती हो। परन्तु मन-प्राण देकर सेवा किए बिना तुम बचोगी—जिओगी कैसे ? इसीसे तो कहती हूं कि उसे अपने पास पाए बिना तुम्हारा काम नहीं चलेगा। 'विवाह न करूंगी'—हठात् ऐसा कोई प्रण न कर बैठना। डरती हूं कि एक बार तुम मन में कोई ज़िद पकड़ लोगी तो फिर तुम्हें

सीधा न किया जा सकेगा।"

लावण्य कुछ वोली नहीं। मुंह नीचा किए साड़ी के आंचल को दवा-दवाकर वेमतलव तह करने लगी। योगमाया ने कहा, "तुम्हें देखकर कितनी ही वार मेरे मन में आया है कि ज़्यादा पढ़ने से, ज़्यादा सोच-विचार करने से तुम्हारा मन वड़ा सूक्ष्म हो गया है; तुम लोगों ने अन्दर ही अन्दर जो सव भाव, जो सव विचार गढ़ लिए हैं, हमारा संसार उसके उपयुक्त नहीं है। हम लोगों के समय में मन के ये सव प्रकाश अदृश्य थे; तुम लोग तो आज उन्हें छोड़ना ही नहीं चाहते। वे देह के मोटे आवरण को भेदकर स्वयं देह को अदृश्य किए दे रहे हैं। हम लोगों के राज्य में मन के मोटे-मोटे भावों को लेकर संसार का यथेष्ट सुख-दुःख था—समस्याएं कुछ कम नहीं थीं। परन्तु आज तुम लोगों ने उन्हें इतना वढ़ा लिया है कि अव कुछ भी सहज नहीं रह गया।"

लावण्य कुछ हंसी। अभी उस दिन अमित अदृश्य आलोक की कथा योगमाया को समझा रहा था। वहीं से यह युक्ति इनके दिमाग में आई है। यह भी तो सूक्ष्म है; योगयामा की मां इस वात को इस तरह नहीं समझती थीं। लावण्य वोली, "मां, मनुष्य का मन काल की गति को जितना ही स्पष्ट करके सव वातें समझ सकेगा, उतना ही कठोर होकर उसका धक्का, उसकी चोट सह सकेगा। अन्धकार का भय, अन्धकार का दुःख असह्य होता है, क्योंकि वह अस्पष्ट होता है।"

योगमाया वोलीं, "आज मैं समझ रही हूं कि यदि तुम दोनों की कभी भेंट न हुई होती तभी अच्छा होता।"

"नहीं, नहीं, ऐसा न कहो। मैं सोच भी नहीं सकती कि जो हुआ उसके सिवा कुछ और भी हो सकता था। एक समय मेरा दृढ़ विश्वास था कि मैं विलकुल सूखी, विलकुल नीरस हूं—केवल पुस्तक पढ़ूंगी और परीक्षा पास करूंगी तथा इसी तरह अपनी ज़िन्दगी काट दूंगी। आज एकाएक देख पाई कि मैं भी प्रेम कर सकती हूं। जो कुछ मेरे जीवन में असंभव था, वह संभव हो गया, यह मेरे लिए कुछ कम नहीं है। जान पड़ता है कि अव तक मैं केवल छाया थी, अव सत्य हुई हूं। इससे अधिक और क्या चाहिए? मुझे व्याह करने के लिए न कहना मां!"

इतना कहकर कुर्सी से उतर वह योगमाया की गोद में सिर रख-कर रोने लगी।

९

गृह-परिवर्तन

आरम्भ में सभीने मान रखा था कि अमित एक पखवारे के अन्दर ही कलकत्ता लौट आएगा। नरेन्द्र मित्र ने तो इसपर बड़ी भारी वाजी लगाई थी कि पूरे सात दिन भी न वीत पाएंगे। पर एक मास वीता, दो महीने वीत गए, लौटने का कहीं नाम-निशान नहीं। शिलांग का मकान जितने दिनों के लिए लिया था, वे वीत गए; रंगपुर के किसी ज़मींदार ने आकर उसपर अधिकार कर लिया। वड़ी खोज के वाद योगमाया के मकान के पास ही एक मकान मिल गया। किसी समय वह ग्वाले या माली के रहने के लिए वनाया गया होगा। उसके वाद एक किरानी—क्लर्क—के हाथ में आया जिससे उसे गरीव भद्रता की थोड़ी आंच लगी। वह किरानी भी मर चुका है; उसीकी विधवा इसे भाड़े पर उठाती है। दरवाज़ों और जंगलों की कृपणता के कारण घर में तेज (प्रकाश), मरुत (हवा) और व्योम (आकाश) इन तीन भूतों का वहुत थोड़ा ही अधिकार है; केवल वरसात में अप (जल) अदृश्य छिद्रपथों से आशातीत प्रचुरता के साथ अवतीर्ण होता है।

एक दिन घर की हालत देखकर योगमाया चौंक पड़ीं। वोलीं, "वेटा, अपने को लेकर यह कैसी परीक्षा कर रहे हो?"

अमित ने उत्तर दिया, "उमा की निराहार तपस्या थी; अन्त में तो उन्होंने पत्ते तक खाना छोड़ दिया था। मेरी है विना असवाव की तपस्या। खाट-पलंग और टेवल-कुर्सी छोड़ते-छोड़ते अव कोरी दीवारों की वारी आ पहुंची है। उमा की तपस्या हुई हिमालय पर्वत पर, और मेरी हो रही है शिलांग पहाड़ पर। उस आख्यान में कन्या ने मांगा था वर, यहां वर कन्या को मांग रहा है। वहां नारद घटक थे, यहां स्वयं मौसी घटक हैं। यदि इस समय अन्त तक कालिदास, किसी कारण से

यहां न पहुंच पाए तो मुझे ही यथासंभव उनका काम करना होगा।"

अमित हंसते-हंसते बातें कर रहा था किन्तु योगमाया को उससे व्यथा हो रही थी। वह कहने ही जा रही थीं कि हमारे मकान में ही चलकर रहो, कि रुक गईं। सोचने लगीं कि विधाता ने एक काण्ड रचा है, उसके बीच हमारे बाधा देने से कहीं असाध्य गांठ न पड़ जाए। उन्होंने अपने यहां से थोड़ा-बहुत सामान भिजवा दिया। इस अकिंचन पर उनकी करुणा दुगुनी हो गई। लावण्य से बार-बार कहा, "बेटी लावण्य! मन को पाषाण न कर डालो।"

एक दिन धुआंधार वर्षा हुई। वर्षा थमते ही यह देखने के लिए कि अमित की क्या हालत है, योगमाया उसके घर गईं। जाकर देखा कि एक टूटे-फूटे चौकोर टेबल के नीचे कम्बल बिछाकर अमित अकेला बैठा हुआ एक अंग्रेज़ी किताब पढ़ रहा है। घर में जहां-तहां वर्षा का पानी अनुचित रूप से टपकते देख उसने टेबल के नीचे एक गुफ़ा बना ली थी और वहां पांव फैलाकर बैठ गया था। पहले एक चोट अपने-आप ही हंस लिया, उसके बाद चलने लगी काव्यालोचना। मन योग-माया के घर की ओर दौड़ता था किन्तु शरीर ने बाधा दी। कारण यह कि जिस जगह उसका कोई भी प्रयोजन नहीं, उस कलकत्ता में उसने एक मूल्यवान बरसाती खरीदी थी; किन्तु जहां सदा ही उसकी ज़रूरत पड़ती है, वहां आते समय उसे लाना ही भूल गया था। साथ में एक छाता ज़रूर लाया था, किन्तु उसे भी संभवतः किसी दिन किसी संकल्पित गम्यस्थान में छोड़ आया है, और यदि ऐसा न हुआ हो तो किसी जीर्ण दीवार के नीचे कहीं पड़ा होगा।

घर में प्रवेश करते ही योगमाया ने कहा, "यह क्या काण्ड है अमित?"

झटपट टेबल के नीचे से बाहर आकर अमित बोला, "मेरा घर आज असम्बद्ध प्रलाप से मतवाला हो रहा है; इसकी दशा मुझसे कुछ अच्छी नहीं है।"

"असम्बद्ध प्रलाप?"

"अर्थात् मेरे इस घर को भारतवर्ष की उपमा देनी होगी। इसके अंशों में, हिस्सों में परस्पर सम्बन्ध टूट गया है। इसीलिए ऊपर से

उत्पात होने पर चारों ओर वेढंगा अश्रुवर्षण होने लगता है। बाहर से तूफान की दपट लगती है तो सांय-सांय करके लम्बी सांस चलने लगती है। घर की मिसगवर्नमेण्ट (कुशासन) के बीच निरुपद्रव होमरूल आन्दोलन का दृष्टान्त लेकर मैंने तो प्रोटेस्ट (विरोध)-स्वरूप अपने सिर के ऊपर एक मंच खड़ा कर लिया है।[1] पालिटिक्स (राजनीति) की एक मूल नीति यहां प्रत्यक्ष देखी जा सकती है।"

"सुनूं तो कि मूल नीति क्या है ?"

"वह यही है कि जो घरवाला घर में नहीं रहता, वह चाहे कितना ही बड़ा और क्षमताशाली हो, उसके शासन से अपने घर में बसनेवाले दरिद्र की जैसी-तैसी व्यवस्था भी अच्छी है।"

आज लावण्य पर योगमाया को खूब क्रोध आया। अमित को जितनी ही गंभीरता से वे स्नेह करती जाती हैं, त्यों-त्यों उनके मन में उसकी मूर्ति उच्च स्थान प्राप्त करती जाती है।—'इतनी विद्या, इतनी बुद्धि लेकर, इतनी परीक्षाएं पास करके भी कैसा सरल हृदय है उसका। शिष्ट बात-चीत करने की कैसी असाधारण शक्ति है उसमें। और अगर मुंह की ही बात लें तो मेरी दृष्टि में वह लावण्य से कहीं अधिक सुन्दर है। लावण्य की किस्मत अच्छी है कि अमित ने किसी ग्रह के चक्कर में पड़कर उसे ऐसी मुग्ध दृष्टि से देखा है। उसी सोने के चांद जैसे लड़के को लावण्य इतना दुःख दे रही है! खामखा कह बैठी कि व्याह न करूंगी। बड़ी राज-राजेश्वरी बनी है! धनुष-भंग की प्रतिज्ञा! इतना अहंकार कैसे सहन होगा? मुंहजली को रो-रोकर मरना होगा।'

एक बार योगमाया के मन में आया कि अमित को गाड़ी पर बिठाकर अपने घर ले चलें। परन्तु बाद में न जाने क्या सोचकर कहा, "भाई, ज़रा बैठो तो, मैं अभी आती हूं।'

घर लौटने पर देखा कि लावण्य अपने कमरे में सोफे पर बैठी पांव

---

१. स्वर्गीया डा० श्रीमती बेसेण्ट ने अंग्रेजी कुशासन के विरुद्ध होमरूल आन्दोलन चलाया था, जिसमें शान्तिपूर्वक विरोध करना ही मुख्य कार्य था। उसीपर व्यंग्य है।

को शाल से ढके हुए 'गोर्की'[1] का 'मां' उपन्यास पढ़ रही है। उसकी इस आरामतलबी को देखकर मन ही मन उनका क्रोध और बढ़ गया।

बोलीं, "चलो, ज़रा घूम आएं।"

लावण्य बोली, "मां, आज कहीं बाहर जाने का मन नहीं करता।"

योगमाया ठीक तरह से यह बात न समझ पाईं कि अपने से भागने के लिए ही लावण्य ने उपन्यास की शरण ली है। सारी दोपहरी, भोजन के बाद से ही उसके मन में एक अस्थिर अपेक्षा, एक चंचल आशा रही है कि अमित कब आएंगे। मन कह रहा है, अब आया ही समझो। बाहर तेज़ हवा की शरारत से पाइन के पेड़ रह-रहकर छटपटा उठते हैं। दुर्दान्त वर्षा के कारण सद्यःजात झरनों में इतनी तेज़ी आ गई है मानो वे अपनी मियाद के समय के साथ सांस खींचकर दौड़ रहे हों। लावण्य के मन में आज एक इच्छा अशान्त हो उठी है कि 'सब बाधाओं को तोड़कर, सब तरह की हिचकिचाहट को हटाकर अमित के दोनों हाथ पकड़कर कह दे कि मैं जन्मजन्मान्तर से तुम्हारी हूं।' आज यह बोलना सहज है। सम्पूर्ण आकाश आज मरने को उद्यत होकर हू-हू करके क्या कहना चाहता है, कुछ ठीक नहीं, परन्तु उसीकी भाषा में आज वन-वनान्तर ने अपनी भाषा पाई है। मूसलाधार वर्षा से उत्तेजित पहाड़ों की चोटियां आकाश की ओर कान लगाए खड़ी हैं। इसी तरह कोई सुनने आए लावण्य की बात, ऐसा ही महत् होकर, इसी तरह स्तब्ध होकर, इसी उदार मनोयोग के साथ। किन्तु पहर पर पहर बीतता जाता है, कोई नहीं आता। मन की बात कहने का जो ठीक लग्न था, वह भी बीत गया। अब कोई आएगा तो बात मुंह से निकलेगी नहीं, तब मन में संशय आ खड़ा होगा, तब ताण्डव-नृत्य से उन्मत्त देवता का 'मा भैः' रव आकाश में विलीन हो जाएगा। बरस के बाद बरस चुपचाप चले जाते हैं; उनके बीच एक दिन किसी विशेष घड़ी में अकस्मात् वाणी आकर मनुष्य के द्वार पर थपकी देती है। उस समय यदि दरवाज़ा खोलने की चाबी न मिली तो फिर और किसी दिन अकुण्ठित स्वर में मन की बात कहने की दैवी शक्ति नहीं आती। जिस दिन वह वाणी आती है, उस दिन सारी दुनिया को पुकारकर,

---

१. एक प्रसिद्ध रूसी उपन्यासकार थे जिनका 'मां' उपन्यास हिन्दी में भी अनूदित हो चुका है।

बुलाकर समाचार देने की इच्छा होती है—तुम सब सुन लो, मैं प्रेम करती हूं। 'मैं प्रेम करती हूं' यह बात अपरिचित सिन्धु के उस पार से आनेवाली चिड़िया की तरह है—न जाने कितने दिनों से, कितनी दूर से चलकर आ रही है, 'इसी बात के लिए मेरे प्राणों में मेरे इष्ट देवता इतने दिनों से प्रतीक्षा कर रहे थे। इसी बात ने आज मुझे स्पर्श किया है—मेरा समस्त जीवन, मेरा समस्त जगत् आज सत्य हो उठा है।' लावण्य तकिये में मुंह छिपाकर न जाने किससे आज कह रही है, 'सत्य है, सत्य है, इससे अधिक सत्य और कुछ नहीं है।'

परन्तु समय चला गया, अतिथि नहीं आया। प्रतीक्षा के गुरु भार से छाती भीतर से कराह उठी। वरामदे में जाकर बौछार से लावण्य थोड़ी भीग भी आई। उसके बाद एक गहरी उदासी ने आकर उसे निविड़ निराशा से ढक दिया। उसे जान पड़ा मानो उसके जीवन में जो कुछ जलने योग्य था, वह भक से जलकर समाप्त हो गया है, अब सामने कुछ भी नहीं रह गया है। अपने भीतर के सत्य की दुहाई देकर अमित को पूरी तरह स्वीकार कर लेने का उसका साहस चला गया। कुछ ही देर पहले उसमें जो एक प्रबल भरोसा जग उठा था वह शिथिल हो गया। बहुत देर तक चुपचाप पड़े रहने के बाद, अन्त में उसने टेबल पर से किताब उठा ली। मन लगाने में कुछ समय लगा। उसके बाद कहानी की धारा में प्रवेश करके कब वह अपने को भूल गई, इसका उसे कुछ पता ही न चला।

ऐसे ही समय आकर योगमाया ने उससे बाहर चलने को कहा, परन्तु उसे उत्साह नहीं हुआ।

योगमाया एक कुर्सी खींचकर लावण्य के सामने बैठ गईं और अपने दीप्त नयनों से उसकी ओर देखती हुई बोलीं, "देख लावण्य! तू सच-सच बता कि क्या तू अमित को प्यार करती है?"

लावण्य झटपट उठकर बैठ गई और बोली, "मां! ऐसी बात क्यों पूछती हो?"

"अगर प्यार नहीं करती तो उसे साफ-साफ कह क्यों नहीं देती? तू बड़ी निष्ठुर है। यदि उसे नहीं चाहती तो इस तरह पकड़कर क्यों रखे हुए है?"

लावण्य को छाती भीतर से धक्-धक् कर उठी; मुंह से बोली न निकल सकी।

"उसकी जो दशा देख आई हूं उससे मेरी छाती फटती है। वह यहां इस तरह भिक्षुक जैसा किसके लिए पड़ा हुआ है ? उसके जैसा लड़का जिसे चाहता हो वह कितनी बड़ी भाग्यवती है, इसे क्या तू बिलकुल नहीं समझती ?"

चेष्टा करके रुंधे गले की बाधा को दूर कर लावण्य बोल उठी, "मां ! मेरे प्रेम करने की बात पूछ रही हो ? मैं तो सोच भी नहीं सकती कि इस पृथ्वी पर मुझसे अधिक प्रेम करनेवाली कोई और है। प्रेम के लिए मैं मर सकती हूं। आज तक मैं जो कुछ थी, मेरा वह सब कुछ लुप्त हो गया है। अब से मेरा एक नवीन आरम्भ, नवीन जन्म हुआ है; इस आरम्भ का अन्त नहीं है। मेरे अन्दर यह कितने बड़े आश्चर्य की बात हो गई है, यह मैं किसीको किस तरह समझाऊं ? और कोई क्या इस तरह उसे जान सका है ?"

योगमाया अवाक् हो गई। सदा से देखती आई हैं कि लावण्य में एक गंभीर शान्ति है, फिर इतना बड़ा दुःसह आवेग उसके अन्दर इतने दिनों से कहां छिपा पड़ा था ? आहिस्ता-आहिस्ता उससे बोलीं, "बेटी लावण्य ! अपने को दबाकर न रखो। अमित तुम्हें अन्धकार में ढूंढ़ता फिरता है; तुम उसके आगे अपने को पूरी तरह प्रकट कर दो—ज़रा भी भय न करो। जो ज्योति तुम्हारे अन्दर जल रही है, वह यदि उसके सामने भी प्रकट हो जाती तो फिर उसे कोई अभाव नहीं रह जाता। बेटी, चलो, तुम अभी मेरे साथ चलो।"

दोनों अमित के घर की ओर चल पड़ीं।

१०

द्वितीय साधना

उस समय अमित भीगी चौकी पर अखबार बिछाकर उनके ऊपर बैठा था। टेबल पर एक दस्ता फुलस्केप कागज़ रखे लिख रहा था।

अपनी विख्यात आत्मकथा लिखना शुरू ही किया था। कारण पूछने पर कहता है, "जैसे बदली के दूसरे दिन प्रातःकाल शिलांग पहाड़ अनेक रंगों में खिलकर दिखाई पड़ता है, वैसे ही मुझे अकस्मात् अपने जीवन के नवीन रूप का दर्शन अब हुआ है। अब जाकर मैंने अपने अस्तित्व की एक कीमत पाई है, इसलिए इसे प्रकट किए बिना मैं कैसे रह सकता हूं! मनुष्य की मृत्यु के बाद जो उसकी जीवनी लिखी जाती है, इसका कारण है कि एक ओर तो वह संसार में मरता है और दूसरी ओर वह मनुष्य के मन में घनीभूत होकर जी उठता है।" अमित का भाव यह है कि शिलांग में एक ओर तो वह मर चुका है, उसका अतीत मरीचिका की भांति विलीन हो चुका है, परन्तु दूसरी ओर वह और तीव्र होकर जी उठा है, अन्धकार की पृष्ठभूमि पर उज्ज्वल आलोक की एक छवि प्रकाशित हो उठी है। इस प्रकाश की कथा तो लिखकर रख ही जाना चाहिए, क्योंकि पृथ्वी पर बहुत ही कम लोगों के भाग्य में ऐसी बात घटित होती है; प्रायः जन्म से लेकर मृत्युकाल तक प्रदोष की छाया में ही उनका जीवन कट जाता है—गुफा में घोंसला बनाकर रहनेवाले चमगादड़ की भांति।

उस समय रिमझिम वर्षा हो रही थी; तूफानी हवा थम गई थी और बादल हलके हो गए थे।

अमित चौकी छोड़कर उठ खड़ा हुआ और बोला, "मौसी! यह कैसा अन्याय है?"

"बेटा, मैंने क्या किया?"

"मैं तो बिलकुल तैयार नहीं था। श्रीमती लावण्य क्या सोचेंगी?"

"श्रीमती लावण्य को सोचने देने की ही तो ज़रूरत है। जिसको जानना है उसे अच्छी तरह जान लेना अच्छा है। इसके लिए श्रीमान् अमित को इतनी आशंका क्यों?"

"श्रीमान् का जो कुछ ऐश्वर्य है वही तो श्रीमती को बताना उचित है; श्रीहीन् की जो दीनता है उसको जानने के लिए तो तुम हो ही मौसी!"

"बेटा, यह भेदबुद्धि क्यों?"

"अपनी ही गरज़ से। ऐश्वर्य लेकर ही ऐश्वर्य पर दावा स्थापित

किया जाता है; अभाव के लिए आशीर्वाद चाहिए। लावण्य देवियों ने मानव-सभ्यता में ऐश्वर्य को जगाया है और मौसियां उसके निकट आशीर्वाद ले आई हैं।"

"देवी और मौसी को एक ही समय पाया जा सकता है अमित ! अभाव को ढकने की ज़रूरत नहीं है।"

"इसका उत्तर कवि की भाषा में देना पड़ेगा। गद्य में जो कुछ कह रहा हूं, उसे स्पष्ट समझाने के लिए छन्द के भाष्य की आवश्यकता है। मैथ्यू अर्नल्ड[1] ने काव्य को 'क्रिटिसिज़्म ऑफ लाइफ'[2] कहा है, मैं उसका संशोधन करके कहना चाहता हूं, 'लाइफ्स कमेण्टरी इनवर्स'[3]। अतिथि-विशेष को पहले से ही बता देना चाहता हूं कि मैं जो कुछ पढ़ रहा हूं, वह किसी कवि-सम्राट की रचना नहीं है :

जिसे प्राण संपूर्ण से चाहते हैं,
उसे रिक्त हाथों नहीं मांगते हैं।
तेरी पुतलियों के वही तो हैं तारे,
नहीं सिक्त नयनों से जा उनके द्वारे।

ज़रा देखिए, प्रेम ही पूर्णता है। उसकी जो आकांक्षा है वह दरिद्र की कंगाली नहीं है। देवता जब अपने भक्त को प्यार करते हैं तभी भक्त के द्वार पर भिक्षा मांगने आते हैं।

प्रिय ! मंजु रत्नहार मेरे लिए लाओगे जब,
प्राण ओ हमारे ! माला-बदल होगा तब।
सूनी और धूल-भरी राह के किनारे,
तू अपनी देवी को आसन बिछा रे।

इसीलिए तो सम्प्रति देवी को ज़रा हिसाब-किताब लगाकर घर में प्रवेश करने के लिए कहा था। बिछाने के लिए कुछ है ही नहीं तो बिछाऊं क्या ? क्या इन भीगे अखबारों को बिछाऊं ? आजकल सम्पादकीय काले दाग से मैं सबसे अधिक भय करता हूं। कवि कहते हैं कि पुकारने योग्य प्राणी को तब पुकारता हूं, जब जीवन का प्याला छलक

---

१. अंग्रेजी भाषा के एक प्रसिद्ध लेखक और समालोचक
२. जीवन की आलोचना
३. पद्यबद्ध जीवन-व्याख्या

उठता है, उसे तृष्णा में शरीक होने को नहीं बुलाता :

निविड़ तमिस्रा में, घन अंधकार में
दीप्त जब प्रदीप्त हो, प्राण तार-तार में।
लक्ष-शिखा जलने लगे, पुष्पभरित चैत्रवन,
बीच तू बांध ले, आए हैं जो प्राणधन।

मनुष्य-जीवन के आरम्भ में दरिद्रता की, नग्न संन्यासी की स्नेह-साधना की जो तपस्या होती है, वह मौसियों की ही गोद में होती है। इस कुटीर में उसीकी कठोर व्यवस्था हुई है। मैंने तो निश्चय कर रखा है कि इस कुटीर का नाम रखूंगा मौसेरा बंगला।"

"बेटा, जीवन की द्वितीय तपस्या ऐश्वर्य की है जिसमें देवी को बाईं ओर रखकर प्रेम-साधना करनी पड़ती है। इस कुटिया में भी तुम्हारी वह साधना भीगे कागज़ों के नीचे दब नहीं सकती। 'वरदान नहीं मिला' कह-कर अपने को भुला रहे हो ; परन्तु मन ही मन जान रहे हो कि वह मिल चुका है।"

यह कहकर योगमाया ने लावण्य को अमित के पास खड़ा कर दिया और उसका दाहिना हाथ अमित के दाहिने हाथ पर पकड़कर रख दिया। फिर लावण्य के गले से सोने का हार निकालकर उससे दोनों के हाथ बांध दिए और बोलीं, "तुम दोनों का मिलन अक्षय हो।"

अमित और लावण्य दोनों ने मिलकर योगमाया के पांवों की धूलि सिर पर ली और प्रणाम किया। योगमाया ने कहा, "तुम लोग बैठो, मैं ज़रा बगीचे से फूल तो लेती आऊं।"

इतना कहकर वे गाड़ी पर बैठकर फ़ूल लेने चली गईं। बहुत देर तक दोनों चुपचाप खटिया पर पास-पास बैठे रहे। अन्त में अमित के मुंह की ओर देखती हुई लावण्य मृदु स्वर में बोली, "आज तुम दिन-भर वहां आए क्यों नहीं ?"

अमित ने उत्तर दिया, "कारण इतना तुच्छ है कि आज की मंगल बेला में उसे मुंह से कहने के लिए साहस की ज़रूरत है। इतिहास में तो कहीं लिखा नहीं मिलता कि पास में बरसाती न होने के कारण बदली के दिन किसी प्रेमी ने अपनी प्रेमिका के पास जाना मुल्तवी—स्थगित—कर दिया हो। उलटे अगाध जलराशि को तैरकर पार करने की कथा

मिलती है। किन्तु क्या तुम नहीं समझतीं कि अन्तर के, हृदय के इतिहास में मैं भी समुद्र में तैर रहा हूं ? उस कूलहीन, तटहीन, अपार समुद्र को क्या कभी मैं पार कर सकूंगा ?

For we are bound where
mariner has not yet dared to go.
And we will risk the ship,
ourselves and all.

हमें सिंधु के पार जाना कहीं है
जहां कोई नाविक भी पहुंचा नहीं है।
भले आज जलयान डूबे हमारा,
भले हम भी डूबें न पाएं सहारा।

वन्यां, आज तुमने मेरे लिए प्रतीक्षा की थी ?"

"हां मीता, वर्षा के शब्दों में सारे दिन तुम्हारे पांव की आहट सुनती रही हूं। मन में होता था कि जाने कितने असम्भव दूर से आ रहे हो जिसका कोई ठीक नहीं। अन्त में आ ही पहुंचे मेरे जीवन में।"

"वन्या, इतने दिनों तक मेरे जीवन में तुम्हें न जानने की एक भारी काली खाई थी। वही सबसे बड़ी कुश्री थी, अशोभा थी। आज वह ऊपर तक भर गई है, बल्कि उसके ऊपर प्रकाश झलमला रहा है और समस्त आकाश की छाया पड़ रही है। आज वही जगह सबसे अधिक सुन्दर हो गई है। यह जो मैं बराबर बात करता चला जा रहा हूं, यह भरे हुए, पूर्ण, प्राण-सरोवर की लहरों की आवाज़ है; इसे कौन रोक सकता है?"

"मीता, आज तुम सारे दिन क्या करते रहे ?"

"मन के बीच तुम बैठी हुई थीं बिलकुल निस्तब्ध। तुमसे मैं कुछ कहना चाहता था, पर वह बात न जाने कहां उड़ गई थी ! आकाश से वर्षा हो रही थी और मैं निरन्तर कह रहा था—वाणी दो, वाणी दो।

O what is this ?
Mysterious and uncapturable bliss
That I have known, yet seems to be
Simple as breath and easy as smile,
And other than the earth.

प्राण ! बोलो यह भला क्या ?

यह रहस्यमयी सुदुर्लभ भूमि जो आनन्द की है,
आज अनुभव में हमारे आ रही स्वच्छन्द भी है ।
सहज श्वास समान वह लगती सरल मुस्कान-सी है,
और प्राचीना धरित्री की नई पहचान-सी है ।

प्राण ! बोलो यह हुआ क्या ?

बैठा-बैठा यही किया करता हूं । दूसरों की बात को अपनी बनाता रहता हूं । अगर सुर दे सकता तो विद्यापति के वर्षागीत को बिलकुल ही अपना लेता :

विद्यापति कहे कैसे बिताइब
हरि बिन दिन-रतिया ।

' 'जिसके न होने पर चल नहीं सकता, उसका न पाने पर दिन कैसे कटेंगे,' इस बात का ठीक सुर कहां पाऊंगा ? ऊपर की ओर, आकाश की ओर देखकर कभी कहता हूं—'वाणी दो', कभी कहता हूं, 'सुर दो ।' वाणी लेकर, सुर लेकर देवता नीचे चले भी आते हैं, परन्तु रास्ते में मनुष्य को पहचानने में भूल करके खामखा किसी दूसरे को दे देते हैं—हो सकता है, तुम्हारे रवि ठाकुर को ही दे दिया हो ।"

लावण्य हंसकर बोली, "जो रवि ठाकुर को प्रेम करते हैं वे भी तुम्हारी तरह बार-बार उनकी याद नहीं करते ।"

"बन्या, आज मैं बहुत ज्यादा बक रहा हूं न ? मेरे बीच बकवास का 'मानसून' उतर आया है । यदि 'वैदर रिपोर्ट' रखो तो देखोगी कि एक-एक दिन में कितने इंच पागलपन बरसाता हूं, इसका कोई ठिकाना ही नहीं हैं । यदि कलकत्ता में होता तो तुम्हें लेकर मोटर का टायर फ़ाड़ता हुआ मुरादाबाद भाग खड़ा होता । यदि पूछतीं मुरादाबाद ही क्यों, तो मैं उसका कोई कारण न बता पाता । बाढ़ जब आती है तब बक-बक करती है, दौड़ती है, समय को हंसते-हंसते फेन की तरह बहा ले जाती है ।"

इसी समय डलिया में सूर्यमुखी के फूल भरे हुए योगमाया आ गईं और बोलीं, "बेटी लावण्य ! इस फूल को लेकर तुम उसे प्रणाम करो ।"

यह और कुछ नहीं, एक अनुष्ठान द्वारा प्राण के भीतर की चीज़ को

बाहर मूर्तिमान करने की नारी-सुलभ चेष्टा है। देह बनाकर खड़ी कर देने की आकांक्षा उसके रक्त-मांस में मिली हुई है।

आज किसी समय अमित ने लावण्य के कान में कहा, "बन्या, एक अंगूठी तुम्हें पहनाना चाहता हूं।"

लावण्य बोली, "उसकी क्या आवश्यकता है मीता ?"

"तुमने मुझे जो अपना हाथ दिया है वह कहां तक दिया है, इसके बारे में मैं अन्त तक सोच नहीं पाता हूं। कवियों ने प्रिया के मुंह को लेकर ही सब कुछ कहा है। किन्तु हाथ में प्राण का कितना संकेत है; प्रेम का जो कुछ भी सम्मान है, जो कुछ भी सेवा है, हृदय का जा कुछ दर्द, जो कुछ अनिर्वचनीय भाषा है, वह सब इसी हाथ में है। मेरे मुंह की एक छोटी बात की तरह अंगूठी तुम्हारी अंगुली के साथ लिपटी रहेगी। और वह बात सिर्फ इतनी है कि 'मैंने पाया।' मेरी यह बात सोने की भाषा में, मानिक की भाषा में, तुम्हारे हाथ में स्थिर रहेगी, छाएगी नहीं।"

लावण्य बोली, "अच्छा, वैसा ही करो।"

"कलकत्ता से मंगवा दूंगा। बोलो तुम्हें कौन-सा रत्न प्रिय है ?"

"मैं कोई रत्न नहीं चाहती, केवल एक मोती पर्याप्त है।"

"अच्छा, वही ठीक है। मैं भी मोती को पसन्द करता हूं।"

११

मिलन-तत्त्व

ठीक हो गया कि आगामी अगहन मास में इनका व्याह होगा। योगमाया कलकत्ता जाकर सब प्रबन्ध करेंगी।

लावण्य ने अमित से कहा, "तुम्हारे कलकत्ता लौटने का दिन तो बहुत पहले बीत चुका है। अनिश्चय के साथ बंधकर तुम्हारे दिन कट रहे थे। अब छुट्टी हुई। निःसंशय होकर चले जाओ। व्याह से पहले अब हमारी भेंट न होगी।"

"इतना कड़ा शासन क्यों ?"

"तुमने उस दिन जिस सहज आनन्द की बात कही थी, उसे सहज बनाए रखने के लिए।"

"यह तो बड़े गम्भीर ज्ञान की बात है। उस दिन तुम्हारे कवि होने का सन्देह किया था, आज सन्देह करता हूं तुम्हें फिलासफर (दार्शनिक) कहकर। क्या चमत्कारपूर्ण बात कही है! सहज को सहज रखने के लिए कठोर होना पड़ता है। छन्द को सहज करना चाहो तो यति को ठीक जगह पर रखना ही होगा। लोभ अधिक है, इसीलिए जीवन के काव्य में कहीं यति (विराम) देने का मन नहीं करता; छन्दोभंग हो जाने पर जीवन एक गीतरहित बन्धन हो जाता है। अच्छा, कल ही चला जाऊंगा—सहसा इन भरे-पूरे दिनों के बीच से। मालूम होगा जैसे मेघ-नादवध काव्य की वह चौंककर खड़ी हो जानेवाली लाइन हो:

जब यमपुर को चला गया था वह अकाल में!

भले ही मैं शिलांग से चला जाऊं, किन्तु पंजिका (पत्रे) से तो अग-हन का महीना चटपट उड़ नहीं जाएगा। जानती हो, कलकत्ता जाकर क्या करूंगा ?"

"क्या करोगे ?"

"जब तक मौसी विवाह-दिवस की व्यवस्था करेंगी, तब तक मुझे उसके बादवाले दिनों का बन्दोबस्त कर लेना होगा। लोग भूल जाते हैं कि दाम्पत्य भी एक कला है; प्रतिदिन नवीन बनाकर उसकी सृष्टि करनी चाहिए। स्मरण आता है बन्या, रघुवंश में महाराज अज ने इन्दु-मती का कैसा वर्णन किया है ?"

लावण्य बोली, "प्रिय शिष्या ललिते कलाविधौ।"

अमित ने कहा, "वह ललित कलाविधि दाम्पत्य की ही है। अधिकांश जंगली व्याह को ही 'मिलन' समझ लेते हैं, इसीलिए उसके बाद से ही मिलन की इतनी उपेक्षा होने लगती है।"

"ज़रा समझा तो दो कि मिलन की कला का तुम्हारे मन में क्या रूप है।"

"अच्छा, तब सुनो। इच्छाकृत बाधा देकर ही कवि छन्द की सृष्टि करता है। मिलन को भी, अपनी इच्छा द्वारा रोक लगाकर, सुन्दर

बनाना पड़ता है। मूल्यवान वस्तु को इतना सस्ता कर देना कि चाहते ही मिल जाए, अपने को ठगना, आत्मवंचना करना है, क्योंकि कड़ा दाम चुकाने का आनन्द भी कुछ कम नहीं है।"

"दाम का हिसाब तो सुनूं।"

"रहो, इसके पहले मेरे मन में जो छवि मौजूद है उसे बताता हूं। डायमंड हार्बर के उस तरफ गंगा का किनारा है, बाग है। एक छोटे स्टीम-लंच से दो घण्टे में कलकत्ता आना-जाना हो सकता है।"

"इसमें कलकत्ता की क्या आवश्यकता आ पड़ी?"

"जानती हैं, अभी कोई आवश्यकता नहीं। बार लाइब्रेरी में जाता अवश्य हूं, पर व्यवसाय नहीं करता, शतरंज खेलता हूं। एटर्नी लोग समझते हैं कि इसे काम की कोई ज़रूरत नहीं, इसीलिए ध्यान नहीं देता। कोई आपसी मुकदमा होता है तो उसकी ब्रीफ मुझे दे देते हैं, उससे अधिक कुछ नहीं। किन्तु ब्याह के बाद दिखा दूंगा कि काम किसे कहते हैं—जीविका के लिए नहीं, जीवन के लिए। आम के अन्दर गुठली होती है; वह न मीठी होती है, न मुलायम होती है, न वह खाने की चीज़ है, किन्तु वह कठोर ही समस्त आम का आश्रय है, उसीके कारण वह आकार पाता है। अब समझ गई होगी कि कलकत्ता की पथरीली गुठली की ज़रूरत किसलिए है? मधुरों के बीच एक कठोर को रखने के लिए।"

"समझ गई। पर ऐसी बात है तो मुझे भी ज़रूरत है। मुझे भी कलकत्ता जाना होगा—दस बजे से पांच बजे तक।"

"इसमें हर्ज क्या है? किन्तु बस्तियों में घूमने-फिरने के लिए नहीं, काम करने के लिए।"

"बताओ, कौन-सा काम? बिना वेतन का?"

"नहीं, नहीं, बिना वेतन का काम तो काम भी नहीं है, छुट्टी भी नहीं है, बारह आने धोखा है। इच्छा होते ही तुम लड़कियों के कालेज में प्रोफेसरी पा सकती हो।"

"अच्छा, इच्छा करूंगी। उसके बाद?"

"स्पष्ट देख रहा हूं, गंगा का तट है; नीचे से उठा एक जटाधारी पुराना वटवृक्ष खड़ा है। धनपति जब गंगा के रास्ते सिंहल गया था तब कदाचित् उसने इसी वटवृक्ष से अपनी नौका बांधकर उसकी छाया

में रसोई चढ़ाई थी। उसके दक्षिण तट पर काई लगा पक्का घाट है जिसमें कितनी ही दरारें पड़ गई हैं ; कहीं-कहीं धंस भी गया है। उस घाट पर हरे और सफेद रंग में रंगी एक नाव बंधी है। नीले झंडे पर सफेद अक्षरों से उसका नाम लिखा है। तुम्हीं बता दो, क्या नाम है ?"

"बोलूं ? मिताली।"

"नाम ठीक ही है—मिताली। मैंने सोचा था—सागरी। मन में कुछ गर्व का अनुभव भी हुआ था, किन्तु तुम्हारे सामने हार माननी पड़ी।···बगीचे के बीच से होकर एक पतली खाड़ी गंगा के हृत्स्पन्दन की ओर चली गई है। उसके उस पार तुम्हारा घर है, इस पार मेरा।"

"तब क्या तुम रोज़ ही तैरकर पार हुआ करोगे, और मैं खिड़की में दीप जलाकर रखा करूंगी ?"

"मन ही मन तैरूंगा, काठ के पुल के ऊपर होकर। तुम्हारे घर का नाम होगा मानसी, और मेरे घर का कोई नाम तुम्हें रखना होगा।"

"दीपक।"

"हां, यह ठीक नाम हुआ। नाम के ही अनुकूल एक दीप मैं अपने घर के ऊपर रखवा दूंगा। मिलन के सन्ध्या काल में उसमें जलेगी लाल रोशनी और विच्छेद की रात में जला करेगी नीली रोशनी। कलकत्ता से लौटने पर रोज़ तुम्हारे पास से आनेवाली एक चिट्ठी की आशा करूंगा। ऐसा होना चाहिए कि वह चिट्ठी भी पा सकूं, न भी पा सकूं। संध्या को आठ बजे तक यदि न पाऊंगा तो दुर्भाग्य को अभिशाप देकर बर्ट्रेण्ड रसेल[1] का तर्कशास्त्र पढ़ने की चेष्टा करूंगा। हमारा यह नियम रहेगा कि बिना बुलाए तुम्हारे घर कभी न जा सकूंगा।"

"और तुम्हारे घर मैं ?"

"दोनों के लिए एक ही नियम होना ठीक रहेगा, किन्तु बीच-बीच में नियम का उल्लंघन होता रहे तो वह असह्य नहीं होगा।"

"ज़रा सोचो कि नियम का उल्लंघन ही यदि नियम न बन गया तो तुम्हारे घर की क्या दशा होगी ? बल्कि बुर्का पहनकर आया करूंगी मैं।"

---

१. विलायत के एक प्रसिद्ध विचारक

"भले ही ऐसा हो, किन्तु मुझे तो निमंत्रण की चिट्ठी चाहिए ही। उस चिट्ठी में और कुछ लिखने की ज़रूरत नहीं, केवल किसी कविता से दो-चार पंक्तियां लिख देना ही काफी होगा।"

"और मेरा निमंत्रण बन्द ? मैं बहिष्कृत ?"

"तुम्हारा निमंत्रण होगा महीने में एक दिन, पूर्णिमा की रात को, चौदह दिनों की खण्डता, अपूर्णता, जिस दिन बिलकुल परिपूर्ण हो उठा करेगी।"

"अब तुम अपनी प्रिय शिष्या को चिट्ठी का एक नमूना दो।"

"बहुत अच्छा।" पाकेट से एक नोटबुक बाहर निकालकर और उससे एक पन्ना फाड़कर लिखा :

Blow gently over my garden
Wind of the southern sea
In the hour my love cometh
And calleth me.

मेरे प्रियतम मंगल क्षण में जब आएंगे मेरे द्वार,
और प्रेम-विगलित वाणी में जब उठेंगे मुझे पुकार।
दक्षिण सागर से आनेवाले समीर मम उपवन में
धीरे-धीरे बहना जिससे रस भर जाये कन-कन में।

लावण्य ने कागज़ ले लिया और लौटाया नहीं।

अमित ने कहा, "अब तुम अपनी चिट्ठी का नमूना दो, देखूं तुम्हारी कितनी आगे है।"

लावण्य एक कागज़ के टुकड़े पर लिखने जा रही थी। अमित बोला, "नहीं, मेरी इस नोटबुक में लिखो।"

लावण्य ने लिख दिया :

"मीता, त्वमसि मम जीवनं, त्वमसि मम भूषणं
त्वमसि मम भवजलधिरत्नम्।"

अमित ने नोटबुक को पाकेट में रखते हुए कहा, "आश्चर्य तो यह है कि मैंने लिखी है नारी के मुंह की बात और तुम लिख रही हो पुरुष की बात। कुछ भी असंगत नहीं हुआ। सेमल की लकड़ी हो या बकुल की, जब जलती है तो आग का चेहरा एक-सा ही होता है।"

लावण्य वोली, "निमंत्रण दे दिया, उसके वाद ?"

अमित बोला, "संध्यातारा उदित हो रहा है, गंगा में ज्वार आ रहा है, हवा झाऊ के वृक्षों के ऊपर से झिर-झिर करके वही जा रही है, वूढ़े वटवृक्ष की जड़ से टकराकर स्रोत छलक उठा है। तुम्हारे घर के पीछे पद्म सरोवर है, वहां खिड़की की ओरवाले निर्जन घाट पर शरीर धो-पोंछकर, तुम वाल गूंथ रही होगी। तुम्हारे वस्त्र अलग-अलग, दिन अलग-अलग रंग के होंगे। सोचते-सोचते जाऊंगा कि आज की संध्या में कौन-सा रंग होगा ? मिलने की जगह भी पहले से निश्चित नहीं रहेगी—किसी दिन चम्पा तले वांध पर, किसी दिन घर की छत पर, किसी दिन गंगा-तट के चौपाल में मिलन होगा। मैं गंगा में नहाकर मलमल की सफेद धोती और चादर पहनूंगा; पांवों में होंगी हाथीदांत की काम की हुई खड़ाऊं। जाकर देखूंगा कि तुम गलीचा विछाए वैठी हो; सामने चांदी की तश्तरी में मोटी-सी फूल की माला रखी है; चन्दन की कटोरी में चन्दन है और एक कोने में धूपवत्ती जल रही है। पूजा (विजयादशमी) के समय कम से कम दो मास के लिए हम दोनों वाहर घूमने निकलेंगे। किन्तु दोनों दो जगह जाएंगे। तुम यदि पहाड़ पर जाओगी तो मैं समुद्र की ओर जाऊंगा।—हमारे दाम्पत्य-द्वैराज्य की यह नियमावली तुम्हारे पास दाखिल कर दी गई है। अब तुम्हारा क्या विचार है ?"

"मान लेने को राज़ी हूं।"

"वन्या ! मान लेने और मन में धारण कर लेने में अन्तर है।"

"तुम्हें जिससे प्रयोजन है, उससे मेरा कुछ प्रयोजन न होने पर भी कोई आपत्ति न करूंगी।"

"प्रयोजन नहीं है तुम्हें ?"

"नहीं, नहीं ! तुम चाहे मेरे कितने ही पास रहो, पर मुझसे वहुत दूर हो। किसी नियम के द्वारा उस दूरत्व को कायम रखना मेरे लिए वाहुल्य—फालतू—है। किन्तु मैं जानती हूं, मेरे अन्दर ऐसी कोई चीज नहीं जो तुम्हारी पास की दृष्टि को विना लज्जा के सहन कर सके। इसीलिए दोनों तटों पर दाम्पत्य के दो हिस्से कर देना मेरे लिए निरापद है।"

अमित चौंककर उठ खड़ा हुआ और वोला, "मैं तुम्हारे निकट

हार नहीं मान सकता वन्या ! भाड़ में जाए मेरा वगीचा। कलकत्ता के वाहर एक कदम न रखूंगा। निरंजन के ग्राफिस की ऊपरवाली मंज़िल में एक मकान पचहत्तर रुपये मासिक भाड़े पर ले लूंगा। वस, वहीं रहोगी तुम, और वहीं रहूंगा मैं। चिदाकाश में निकट-दूर का कोई भेद नहीं। साढ़े तीन हाथ चौड़े विछौने पर वाईं ओर तुम्हारा महल 'मानसी' और दाहिनी तरफ मेरा महल 'दीपक' रहेगा। कमरे की पूर्वी दीवार में एक आइने-वाला दराज़ रहेगा; उसमें तुम्हारा भी मुंह दिखाई देगा और मेरा भी। पश्चिम की तरफ रहेगी पुस्तकों की अलमारी जो दो पाठकों की सर्कू-लेटिंग लाइब्रेरी का काम देगी। उत्तर की ओर एक सोफा रहेगा, उसकी वाईं ओर कुछ जगह खाली छोड़कर मैं वैठूंगा और दो हाथ के अन्तर पर अपनी कपड़ों की अलगनी की आड़ में तुम खड़ी होगी। निमंत्रण की चिट्ठी, मैं कांपते हाथ से, ऊपर की ओर उठाऊंगा। उस चिट्ठी में लिखा होगा:

छत पर मेरे नीरव वहना,
हे प्रशांत दक्षिणी पवन,
जिस क्षण प्रिया-दृष्टि से,
मिल जाएं मेरे निस्तव्ध नयन।

क्या सुनने में वुरा लगा वन्या ?"

"विलकुल नहीं मीता ! किन्तु यह संकलित कहां से की गई है ?"

"हमारे वन्धु नीलमाधव की कापी से। उसकी भावी वधू तव अनिश्चित थी। उसीको लक्ष्य करके उसने अंग्रेज़ी कविता को कलकतिया सांचे में ढाला था; इस कार्य में मैंने भी उसे सहायता दी थी। एकोना-मिक्स (अर्थशास्त्र) में एम० ए० पास करके पन्द्रह हज़ार रुपये नकद और अस्सी भरी गहने के साथ वेचारा नववधू को घर लाया था; चार आंखें भी हुईं और दक्षिणी पवन भी वहा, किन्तु वह इस कविता का प्रयोग फिर न कर सका। इसीलिए अव इस कविता की रचना करने-वाले अपने दूसरे साझीदार को पूर्ण अधिकार दे देने में उसे कोई वाधा नहीं आनी चाहिए।"

"तुम्हारी छत पर भी दक्षिणी पवन वहेगा, किन्तु तुम्हारी नववधू क्या सदा ही नववधू रहेगी ?"

टेवल पर ज़ोर से हाथ मारकर उच्च स्वर में अमित वोला,

"रहेगी, रहेगी, रहेगी।"

पास के कमरे से योगमाया तेज़ी से-दौड़कर आ बोलीं, "क्या रहेगी अमित ? जान पड़ता है, मेरी यह टेवल तो नहीं ही रहेगी।"

"संसार में जो कुछ टिकाऊ है, सब रहेगा। इस संसार में नववधू दुर्लभ है, किन्तु लाख में एक भी यदि दैवयोग से मिल जाए तो वह सदा ही नववधू बनी रहेगी।"

"कोई दृष्टान्त बताओ तो देखूं।"

"एक दिन समय आएगा, तब दिखा दूंगा।"

"जान पड़ता है, उसमें अभी कुछ देर है। अभी खाना खाने चलो।"

१२

शेष संध्या

भोजन समाप्त हो जाने पर अमित ने कहा, "मौसी ! कल कलकत्ता जा रहा हूं। हमारे आत्मीय स्वजन सब सन्देह करने लगे हैं कि मैं खासिया हो गया हूं।"

"आत्मीय स्वजन जानते हैं क्या कि बात-बात में तुम्हारा इतना बदल जाना संभव है ?"

"खूब जानते हैं। न जानते तो आत्मीय स्वजन कैसे ? किन्तु यह जानना बात-बात में नहीं है, खासिया होने में भी नहीं है। आज मेरा जो परिवर्तन हुआ है वह क्या जाति-परिवर्तन है, यह तो युग-परिवर्तन है; इसके बीच, एक कल्पान्त है। प्रजापति मेरे भीतर एक नई सृष्टि में जाग उठे हैं। मौसी, अनुमति दो, लावण्य को साथ लेकर एक बार बाहर घूम आऊं। जाने के पहले शिलांग पहाड़ को हम दोनों नमस्कार कर जाना चाहते हैं।"

योगमाया ने अनुमति दे दी। कुछ दूर जाते-जाते दोनों के हाथ मिल गए, वे एक-दूसरे से सटकर चलने लगे। निर्जन पथ के किनारे नीचे की ओर दूर तक घना जंगल है। उस जंगल में कुछ आगे खुली जगह

है जहां आकाश को मानो पहाड़ की नज़रबन्दी से कुछ मुक्ति मिली है और उसने अस्त सूर्य की शेष आभा से अपनी अंजलि भर ली है। वहीं पश्चिम की ओर मुंह करके दोनों प्राणी खड़े हो गए। अमित ने लावण्य का सिर अपनी छाती की ओर खींचते हुए उसका मुंह ऊपर को उठा दिया। लावण्य की आंखें उनींदी-सी अधखुली रह गईं और उनसे आंसू निकलने लगे। आकाश में सुनहले रंग में चुन्नी और पन्ना की पिघली हुई ज्योति की आभा मिली-घुली जा रही थी। बीच-बीच में पतले बादलों की सांधों से निर्मल नील झांक रहा था, जैसे भीतर से जहां देह की स्थिति नहीं है, शुद्ध आनन्द ही रह गया है उस अमर्त्य जगत् का अव्यक्त ध्वनि आ रही हो। धीरे-धीरे अन्धकार घना हो गया। उस खुले आकाश ने भी रात्रिकाल के फूल की तरह अपनी नाना रंग की पंखुड़ियों को बन्द कर लिया।

अमित की छाती के पास सरककर लावण्य ने मृदु स्वर में कहा, "अब चलो।" उसके मन में कुछ ऐसा लगा कि यहीं तक खत्म करना अच्छा है।

अमित भी यह समझ गया, किन्तु कुछ बोला नहीं। लावण्य का मुख एक बार अपने सीने पर रखकर, घर लौटने के रास्ते पर धीरे-धीरे चलने लगा।

बोला, "कल सुबह ही मुझे चले जाना होगा, उसके पहले तुमसे मिलने नहीं आऊंगा।"

"क्यों नहीं आओगे?"

"आज ठीक जगह पर पहुंचकर हमारा शिलांग पर्वत-अध्याय समाप्त हुआ है—इति प्रथमः सर्गः, हमारा सखी-सखा स्वर्ग।"

लावण्य कुछ नहीं बोली, अमित का हाथ पकड़कर चलने लगी। छाती के भीतर आनन्द है और उसीके साथ-साथ एक क्रन्दन, एक रोदन भी स्तब्ध-सा पड़ा है। उसके मन में आया कि ऐसी सघनता के साथ और जीवन के इतने निकट अचिन्तनीय अब कभी नहीं आएगा। परम क्षण में शुभ दृष्टि हुई है, इसके बाद क्या अब सुहागरात है? रह गया केवल मिलन एवं विदाई का एक-दूसरे में मिला हुआ अन्तिम प्रणाम। बड़ी इच्छा हुई कि यहीं अमित को वह प्रणाम करले, बोले—

'तुमने मुझे धन्य किया।' किन्तु वह संभव न हो सका।

घर के निकट पहुंचकर अमित बोला, "वन्या, आज तुम अपनी अन्तिम बात कविता में कहो। ऐसा करने से उसे मन में रखकर ले जाना सहज होगा। तुम्हारे मन में जो कुछ आ जाए उसीमें से एक मुझे सुना दो।"

लावण्य कुछ सोचकर कहने लगी :

नहीं तुम्हें सुख दिया आज तक मैंने प्रियतम !
छोड़ चली हूं रजनी के शुभ्रावसान में,
कम्पित कर से मंजु-मुक्ति-नैवेद्य-अर्घ्य-मम।
आज नहीं कुछ शेष प्रार्थना, दैन्य-दुःख-क्षण,
नहीं शेष अभिमान, गर्वमय हास्य हमारा।
नहीं शेष है प्रिय ! विगलित मन का वह रोदन,
मिट गई है आज, पीछे देखने की चाह फिरकर।
और अपनी मृत्यु की महनीयता से,
मुक्ति की शत-शत शिखाएं आज दीं भर।

"वन्या, तुमने बड़ा अन्याय किया। आज के दिन तुम्हारे मुंह से निकलने की यह बात नहीं थी—किसी तरह नहीं। कैसे तुम्हारे मन में आई यह बात ? तुम अपनी इस कविता को अभी लौटा लो।"

"भय किसका है मीता ? यह आग में पड़ा हुआ (तपा हुआ) प्रेम है, यह सुख का दावा नहीं करता, वह अपने को मुक्त करके ही मुक्ति देता है, इसके पीछे क्लान्ति नहीं आती, म्लानता नहीं आती—इससे बड़ी देने की और क्या चीज़ हो सकती है ?"

"किन्तु मैं जानना चाहता हूं कि यह कविता तुम्हें मिली कहां से ?"

"रवि ठाकुर की है।"

"उनकी किसी किताब में तो इसे देखा नहीं।"

"पुस्तक में नहीं निकली।"

"तब तुम्हें कैसे मिली ?"

"एक लड़का था। वह गुरु मानकर मेरे पिता की भक्ति करता था। हमारे पिता ने उसे ज्ञान का भोजन दिया था। इस ओर उसका हृदय भी तपस्वी था। जब फुर्सत होती तो वह रवीन्द्रनाथ के पास जाया

करता था और उनकी कापी में से एक मुट्ठी भीख लाया करता था।"

"और लाकर तुम्हारे पैरों में रख दिया करता था ?"

"यह साहस उसमें नहीं था। कहीं भी रख देता था कि मेरी दृष्टि में पड़ जाए और मैं उठा लूं।"

"दया की थी उसपर ?"

"करने का अवकाश ही नहीं मिला। मन ही मन प्रार्थना करती हूं, ईश्वर उसपर दया करें।"

"जो कविता आज तुमने पढ़ी है, अच्छी तरह समझ रहा हूं कि यह उसी अभागे के मन की बात है।"

"हां, उसकी बात तो है ही।"

"तब वह आज तुम्हारे मन में कैसे आई ?"

"कैसे बताऊं ? इस कविता के साथ एक और कविता का अंश था। वह भी आज मुझे याद आ रहा है। क्यों याद आ रहा है, यह मैं ठीक बता नहीं सकती :

सुन्दर, तुम चक्षु भर लाए हो अश्रुजल।
और निज वक्ष धरे एक दुस्सह होमानल,
जिससे हो जाता है दुःख-तिमिर शुभ्र धवल।
और मुग्ध प्राणों का है टूटता आवेग-बन्ध,
मुक्त हुआ जा रहा है जीवन का छन्द-छन्द।
तापपूर्ण प्रेमसूर्य मुग्ध-किरण-जाल-स्नात,
विकसित हो उठता है विरह-शत-जलजात।

अमित ने लावण्य का हाथ दबाकर कहा, "बन्या, वह लड़का आज हमारे बीच कहां से आ पड़ा ? मैं ईर्ष्या करने से घृणा करता हूं, यह मेरी ईर्ष्या नहीं है—पर न जाने मन में कैसा एक भय लगता है ! बताओ, उसकी दी हुई ये कविताएं आज ही क्यों तुम्हें याद आ गई ?"

"एक दिन जब वह हमारे घर से विदा लेकर चला गया, उसके बाद जिस डेस्क पर वह पढ़ता-लिखता था उसीमें मुझे ये दोनों कविताएं मिली थीं। इसके साथ रवि ठाकुर की और भी अनेक अप्रकाशित कविताएं थीं जिनसे करीब-करीब एक कापी ही भर गई थी। आज तुमसे विदा ले रही हूं, हो सकता है कि इसीलिए विदा की यह कविता याद

आ गई हो।"

"वह विदा और यह विदा क्या एक ही है ?"

"कैसे बताऊं ? किन्तु इस प्रकार के तर्क की तो कोई आवश्यकता नहीं है। जो कविता मुझे अच्छी लगती है, वह मैंने तुम्हें सुना दी। हो सकता है, इसके सिवा और कोई कारण इसमें न हो।"

"वन्या, जब तक लोग रवि ठाकुर की रचनाएं एकदम भूल नहीं जाते, तब तक उससे श्रेष्ठ रचनाएं सत्य रूप में खिल न पाएंगी। इसीलिए मैं उनकी कविता का कभी उपयोग नहीं करता। दल के लोगों को कोई चीज़ अच्छा लगना उस कुहासे की तरह है, जो आकाश पर अपने गीले हाथ लगाकर उसके आलोक को गन्दा कर डालता है।"

"देखो मीता, स्त्रियां अच्छी लगनेवाली ऊपरी आदर की वस्तु को अपने अन्तःपुर में अपना ही बनाकर रख छोड़ती हैं, वे भीड़ के आदमियों की खोज-खबर नहीं लेतीं। वे जितना दाम दे सकती हैं, सब दे डालती हैं; उन्हें पांच आदमियों को लेकर बाज़ार-भाव जांचते फिरने का मन नहीं होता।"

"तब तो मेरे लिए भी आशा है वन्या ! मैं अपने बाज़ार-भाव की छोटी छाप को छिपाकर तुम्हारे दर का बड़ा-सा मार्का लिए, छाती फुलाकर घूमा करूंगा।"

"हमारा घर आ गया मीता। अब तुम्हारे मुंह से तुम्हारी पथ-समाप्ति की कविता भी सुन लूं।"

"गुस्सा न होना वन्या, मैं रवीन्द्रनाथ की कविता न सुना पाऊंगा।"

"मैं गुस्सा क्यों करने लगी ?"

"मैंने एक लेखक का आविष्कार किया है, उसका स्टाइल (शैली)..."

"उसकी बात तुमसे बराबर ही सुनती रहती हूं। उसकी एक पुस्तक भेजने के लिए कलकत्ता पत्र लिख दिया है।"

"सर्वनाश ! उसकी पुस्तक ! उस आदमी में और कितने ही दोष हैं परन्तु वह अपनी पुस्तक छपने को नहीं देता। मेरे पास से ही धीरे-धीरे उसका परिचय तुम्हें मिलता जाएगा। नहीं तो कदाचित्..."

"भय मत करो मीता, तुम उसे जिस भाव से समझते हो, उसी रूप में, उसी भाव से मैं भी उसे समझ लूंगी, ऐसा विश्वास मुझे है। जीत

मेरी ही रहेगी ।"

"कैसे ?"

"अपने को अच्छा लगनेवाला जो मैं पाती हूं वह भी मेरा ही है और तुमको अच्छा लगनेवाला जो पाऊंगी वह भी मेरा हो जाएगा। मेरी ग्रहण करने की अंजलि दो प्राणियों के मन से मिलकर वनेगी। कलकत्ता में, तुम्हारे छोटे से घर की पुस्तकों की अलमारी के एक ही शेल्फ पर दोनों कवियों की कविताएं रखूंगी । अव तुम अपनी कविता सुनाओ।"

"और कुछ सुनाने की इच्छा नहीं होती। बीच में जो वड़े-वड़े तर्क-वितर्क आ पड़े उनके कारण हवा खराव हो गई है।"

"कुछ भी खराव नहीं हुआ। हवा ठीक है।"

अमित उसके सिर के वालों को ऊपर की ओर करता हुआ दर्द से भरे हुए सुर में कहने लगा :

"दूर के शैल-शिखरान्त पर,
सुन्दरी तुम हो शुक्रतारा।
दर्शन देना दिक्‌भ्रान्त में,
शर्वरी-तम जव हटे सारा।

समझती हो वन्या ? चांद शुक्रतारा को पुकार रहा है। वह अपनी रात वितानेवाली संगिनी चाहता है। अपनी रात से उसे वितृष्णा हो गई है :

धरा जहां मिलती है दौड़ गले अम्वर के,
वहां का हूं अधजागा अधसोया चन्द्र मैं।
निविड़ निशीथ-तम-वक्ष पर पड़ा हुआ,
वक्रिल-सी आधी ज्योति-रेखा का रन्ध्र मैं।

उसकी इसी अधजगी अल्प ज्योति ने अंधकार को ज़रा-सा खरोंच दिया है। इसीका उसे खेद है। स्वल्पता के इस जाल ने उसे जकड़ लिया है, उसीसे छूटकर वाहर निकल जाने के लिए ही मानो वह सारी रात घूम-घूमकर कराह रहा है। क्या आइडिया है, ग्रैण्ड :

गुरु निद्रित उस महाशून्य ने,
मेरा आसन विछा दिया है।

तन्द्रा खंडित कर सपने में,
हृत्तंत्री को वजा दिया है।

किन्तु इस प्रकार हलका होकर, सस्ता होकर जीने का वोझ वहुत अधिक है; जिस नदी का पानी मर चला है, सूख चला है, उसके मन्थर स्रोत की थकावट में घासपात—सेवार का जंजाल जमता रहता है। जो स्वल्प है वह अपने को ढोने में हांफ रहा है। तभी तो कहता है:

मन्द चरण से पार चला मैं,
यात्रा मेरी पूर्ण हुई।
क्लान्ति-अवश हैं अंग हमारे,
सुर-वाणी अव चूर्ण हुई।

किन्तु इस क्लान्ति में, इस थकान में ही क्या उसका अन्त है? उसे अपनी ढीले तारवाली वीणा को नवीन रूप में वांधकर ठीक कर लेने की आशा भी हुई है। दिगन्त के उस पार किसीके चरणों की ध्वनि उसे सुनाई देती है:

रात्रि जव शेष न हो,
तभी तुम आना मेरी सुन्दरी तारा!
जागरण में पूर्ण करना,
स्वप्न का अपूर्ण वचन प्यारा।

उद्धार की आशा है, जाग्रत् विश्व का विपुल कलरव कानों को सुनाई पड़ रहा है, उस महापथ की दूती अपना दीपक हाथ में लिए आने ही वाली है:

भ्रमित हूं मैं आज तम में,
है चतुर्दिक् जो अंधेरा।
ले चलो तुम ज्योति-मग में,
धन्य हो मेरा सवेरा।
है जहां पर सुप्ति भी तल्लीन,
जग का मन्द्र भी है,
प्रिय! वहीं वीणा समर्पित,
अर्ध-जाग्रत् चन्द्र की है।

वह अभागा चांद तो मैं ही हूं। कल प्रभातकाल में चला जाऊंगा।

किन्तु इस अपने चले जाने को मैं शून्य नहीं रखना चाहता। उसके ऊपर जागरण का गीत लिए शुक्रतारा सुन्दरी उदित होगी। अब तक अंधेरे जीवन के स्वप्न में जो अस्पष्ट था उसे सुन्दरी शुक्रतारा प्रभात में सम्पूर्ण कर देगी। इसमें एक आशा का बल है, आनेवाले प्रभात का एक उज्ज्वल गौरव है; तुम्हारे उस रवि ठाकुर की कविता की भांति मुरझाया, निराशा का विलाप उसमें नहीं है।"

"गुस्सा क्यों होते हो मीता ! रवि ठाकुर जो कुछ कर सकते हैं, उससे अधिक नहीं कर सकते। इस बात को बार-बार कहने से फायदा क्या है ?"

"तुम सब मिलकर उसे बहुत अधिक···"

"यह न कहो मीता ! मेरा अच्छा लगना मेरा ही है, उसमें यदि संयोगवश किसी और के साथ भी मेरा मन मिल जाता है और तुम्हारे साथ नहीं मिलता तो क्या मेरा दोष है ? फिर मैं इसके लिए तैयार हूं कि तुम्हारे उस पचहत्तर रुपयेवाले मकान में किसी दिन यदि मुझे भी जगह मिली तो तुम अपने इस कवि की रचनाएं मुझे सुनाया करना; मैं अपने कवि (रवीन्द्रनाथ) की रचनाएं तुम्हें न सुनाऊंगी।"

"यह तो अन्याय की बात हुई। एक-दूसरे का जुल्म कंधे पर मिल-जुलकर ढोने के लिए ही तो विवाह है।"

"तुम रुचि का जुल्म किसी तरह सहन नहीं कर पाओगे। रुचि के भोज में निमन्त्रितों के अलावा और किसीको तुम लोग घर में घुसने नहीं देते, किन्तु मैं अतिथि को भी आदर के साथ बिठाती हूं।"

"बहस छेड़कर मैंने अच्छा नहीं किया। हमारी इस अन्तिम संध्या का सुर बिगड़ गया।"

"ज़रा भी नहीं। जो कुछ कहने को है, सब स्पष्ट कह देने पर भी जो सुर स्वस्थ बना रहता है, वही हमारा सुर है। उसमें क्षमा की कोई सीमा नहीं है।"

"आज मुझे अपने मुंह का विस्वाद मिटाना ही होगा, किन्तु वह बंगला काव्य से न हो सकेगा। अंग्रेजी काव्य में मेरी विचार-बुद्धि ठंडी रहती है। स्वदेश लौटने पर शुरू-शुरू में मैंने भी कुछ दिन प्रोफेसरी की थी।"

लावण्य हंसकर बोली, "हम लोगों की विचार-बुद्धि अंग्रेज़ के घर के उस बुलडाग की तरह है, जो धोती की कांछ लटकती देख भूंक उठता है। वह जानता ही नहीं कि धोती पहननेवालों में कौन भद्र है, परन्तु खानसामे का तगमा देखते ही पूंछ हिलाने लगता है।"

"यह तो मानना ही पड़ेगा। पक्षपात कोई स्वाभाविक वस्तु नहीं है; अधिकांश स्थानों में वह फर्माइश से तैयार किया जाता है। अंग्रेज़ी साहित्य के प्रति पक्षपात बचपन से ही कनेठी खा-खाकर पुष्ट हो गया है। उस आदत के कारण जहां एक पक्ष को बुरा कहने का साहस नहीं होता, वहां दूसरे पक्ष को अच्छा कहने के साहस का अभाव भी रहता है। पर जाने दो, आज तो निवारण चक्रवर्ती की भी नहीं, केवल शुद्ध अंग्रेज़ी कविता, बिना किसी तर्जुमा के चलने दो।"

"नहीं, नहीं मीता, अपनी अंग्रेज़ी रहने दो, वह घर लौटने पर टेबल के पास बैठकर होती रहेगी। आज हमारी इस सन्ध्या की अन्तिम कविता निवारण चक्रवर्ती की ही होनी चाहिए, और किसीकी नहीं।"

अमित उत्फुल्ल होकर बोला, "निवारण चक्रवर्ती की जय! इतने दिनों पर वह अमर हुआ। बन्या, उसे मैं तुम्हारा सभा-कवि बना दूंगा। तुम्हें छोड़ और किसीके द्वार पर वह प्रसाद नहीं लेगा।"

"उससे क्या वह निरन्तर सन्तुष्ट रहेगा?"

"न रहेगा तो उसे कनेठी देकर विदा कर दूंगा।"

"अच्छा, कनेठी देने की बात पीछे स्थिर करेंगे, इस समय तो उसकी कविता सुनने दो।"

अमित सुनाने लगा:

रात-दिवस, कितना धीरज धर,
रहतीं पास हमारे।
कितने दिन जीवन के बीते,
तेरे स्नेह - सहारे।
मेरे भाग्य - मार्ग पर हैं,
कितने पद - चिह्न तुम्हारे।
आज दूर मैं चला प्रिये!
दुनिया के एक किनारे।

अरे, विदा की इस वेला में क्या दूं तुमको दान ?
ले लो, मेरे पास और क्या ? अपना ही जयगान ।।

कितने व्यर्थ हुए आयोजन
मेरे इस जीवन में।
नहीं जली होमाग्नि,
निराशा धूम बनी है मन में।
महाशून्य में कुण्डलिनी-सा
धुआं उठा वह मेरा।
निश्चेतन निशीथ-मस्तक पर,
छाया जहां अंधेरा।
वार-वार अंकित की मैंने,
ज्योति-वलय का टीका।
किन्तु काल की निष्ठुर गति ने,
उसे बनाया फीका।
तुम आईं जब आज,
लगा है होम-हुताशन जलने।
विह्वल मन है लगा प्रिये !
गौरव के शब्द उगलने।
आज हमारा यज्ञ धन्य
हो गया, हुआ दिन शेष।
अपने को दे दिया तुम्हें,
अव सब इच्छा निश्शेष।
जीवन के परिणाम पूर्ण तुम,
करता तुम्हें प्रणाम।
मेरी प्रणति-मध्य तुम भर दो,
अपना स्नेह ललाम।

अपने शुभ ऐश्वर्य-मध्य है जहां तुम्हारा सिंहासन।
मेरी प्रणति और जीवन को दे देना छोटा आसन।।

१३

आशंका

सुबह के कामों में मन लगाना, ध्यान देना आज लावण्य के लिए कठिन हो गया है। वह टहलने भी नहीं गई। अमित ने कहा था, शिलांग से जाने के पहले, आज सुबह वह उन लोगों से भेंट करना नहीं चाहता। उस प्रण को निभाने का बोझ दोनों के ही ऊपर है; क्योंकि जिस रास्ते वह घूमने जाती है उसी रास्ते से होकर अमित को जाना है। उसके मन में पर्याप्त लोभ था, परन्तु उसे कसके दबा देना पड़ा। योगमाया बड़े सवेरे ही स्नान करके अपनी पूजा के लिए कुछ फूल चुनने जाती हैं। उनके जाने के पहले ही लावण्य उस जगह से यूक्लिप्टस के नीचे चली आई। हाथ में दो-एक पुस्तकें थीं, जान पड़ता है अपने को और दूसरों को भी भुलावा देने के लिए। किताब खुली है किन्तु समय बीता जा रहा है और पन्ने पलटे नहीं जा रहे हैं। मन में सिर्फ यही बात उठती है कि 'जीवन के महोत्सव का दिन कल समाप्त हो गया।' आज सुबह से कभी बादल आ जाते हैं, कभी धूप हो जाती है, जैसे भग्नता का दूत आकाश में झाड़ू फेर रहा है। उसके मन में विश्वास दृढ़ हो गया है कि अमित अब सदा के लिए जा रहा है; एक बार खिसक जाने पर फिर कहीं उसका पता न लगेगा। रास्ता चलते-चलते न जाने कब वह कहानी शुरू कर देता है। फिर रात आ जाती है और दूसरे दिन सुबह दिखाई पड़ता है कि कहानी का सिलसिला टूट गया है—मुसाफिर जा चुका है। लावण्य सोच रही है कि उसकी अधूरी कहानी अब सदा के लिए अधूरी रह गई है। आज प्रातःकाल के प्रकाश में उस कहानी के अधूरी रह जाने की उदासी है और गीली हवा में असमय उसके समाप्त हो जाने का अवसाद छा गया है।

इसी समय, जब नौ बज रहे होंगे, धम्-धम् करता अमित घर के अन्दर आकर पुकार उठा, "मौसी, मौसी!" योगमाया प्रातःसंध्या से छुट्टी पाकर भण्डारे की देख-रेख में लगी हुई थीं। आज उनका मन भी पीड़ित था। अमित ने अपनी बातचीत से, हंसी से, चंचलता से इतने दिनों

तक उनके स्नेहासक्त मन को और उनके घर को भर रखा था। वह चला गया, इस व्यथा के बोझ से उनका प्रातःकाल वर्षा की झड़ी की चोट से अभी गिरे हुए फूल की भांति मुरझा गया है। अपनी विच्छेद-कातर गृहस्थी के काम में आज उन्होंने लावण्य को नहीं बुलाया। सोचा—आज उसे अकेली, लोगों की दृष्टि की ओट में ही रहने की ज़रूरत है।

लावण्य झटपट उठ खड़ी हुई। उसकी गोद से किताबें गिर पड़ीं, किन्तु उसे कुछ मालूम ही न पड़ा। इधर योगमाया भण्डारे से तुरन्त तेज़ी से बाहर आकर बोलीं, "क्या है बेटा अमित ? भूकम्प हो रहा है क्या ?"

"भूकम्प तो है ही। सब सामान रवाना कर दिया है; गाड़ी तैयार खड़ी है, डाकखाने गया था कि कोई चिट्ठी-पत्री आई हो तो लेता चलूं। वहां मिला एक तार।"

अमित के मुंह का भाव देखकर योगमाया ने उद्विग्न होकर पूछा, "सब ठीक तो है ?"

लावण्य भी कमरे में आ गई। अमित ने व्याकुल मुंह से कहा, "आज ही शाम को आ रही है सिसी, मेरी बहिन, अपनी एक सखी केटी मित्तिर और उसके भाई नरेन के साथ।"

"तो चिन्ता की क्या बात है बेटा ? सुना है, घुड़दौड़ के मैदान के पास कोई मकान खाली है। यदि वह न भी मिल सका तो क्या हमारे यहां किसी प्रकार जगह का इन्तज़ाम न हो जाएगा !"

"उसके लिए चिन्ता नहीं है मौसी ! उन लोगों ने खुद ही तार देकर होटल में पहले से जगह ठीक कर ली है।"

"बेटा, और जो हो, तुम्हारी बहिनें आकर देखें कि तुम उस अकिंचन झोंपड़ी में रह रहे हो, यह हर्गिज़ नहीं हो सकता। वे अपने आदमी की सनकों के लिए हम लोगों को ही ज़िम्मेदार समझेंगी।"

"नहीं मौसी ! मेरा 'पैरेडाइज़ लॉस्ट'[1] है। उस असबावहीन स्वर्ग से मेरी बिदाई हो चुकी है। उस रस्सीवाली खाट के नीड़ से मेरे सारे

---

१. अंग्रेज़ी भाषा का प्रसिद्ध महाकाव्य, जिसका शाब्दिक अर्थ 'खोया स्वर्ग' है।

सुख-स्वप्न उड़ जाएंगे। मुझे भी स्थान ग्रहण करना होगा उस अति परिच्छन्न होटल के एक अत्यन्त सभ्य कमरे में।"

कोई विशेष बात नहीं थी, फिर भी लावण्य का मुंह फीका पड़ गया। इतने दिनों से यह बात उसके ध्यान में ही न आई थी कि अमित का जो समाज है, वह उसके समाज से हज़ारों कोस दूर है। एक ही मुहूर्त में वह सब समझ गई। अमित, जो आज कलकत्ता चला जा रहा था, उसमें विच्छेद की कठोर मूर्ति नहीं थी। किन्तु यह जो आज उसे होटल में जाकर रहने के लिए बाध्य होना पड़ रहा है, इसीसे लावण्य ने समझ लिया कि जिस घर को उन दोनों ने इतने दिनों तक नाना प्रकार के अदृश्य उपकरणों से गढ़कर तैयार किया था, वह अब फिर कभी दिखाई न पड़ेगा।

लावण्य की ओर ज़रा देखकर अमित ने योगमाया से कहा, "मैं चाहे होटल में जाऊं या जहन्नुम में, किन्तु मेरा असली घर यहीं है।"

अमित समझ चुका है कि शहर से एक अशुभ दृष्टि आ रही है। मन ही मन ऐसे उपाय सोच रहा है जिनसे सिसी का दल यहां पर न आने पावे। किन्तु इधर कुछ दिनों से उसकी चिट्ठी-पत्री योगमाया के पते पर ही आ रही हैं। उसने नहीं सोचा था कि इसके कारण किसी समय उसपर विपत्ति भी आ सकती है। अमित के मनोभाव दबाने से दबे रहना नहीं चाहते, वल्कि और प्रबल रूप से प्रकट होते हैं। अपनी बहिन के आने के बारे में अमित की इतनी अधिक परेशानी योगमाया को असंगत मालूम हुई। लावण्य ने भी सोचा कि कदाचित् मेरे कारण अपनी बहिनों के सामने लज्जा अनुभव कर रहा है। इन बातों के कारण मामला लावण्य के लिए विस्वाद एवं असम्मानजनक हो उठा।

अमित ने लावण्य से पूछा, "क्या तुम्हें फुर्सत है? घूमने चलोगी?"

लावण्य ने कुछ कठोर होकर कहा, "नहीं, मुझे समय नहीं है।"

योगमाया कुछ नाराज़ होकर बोलीं, "बेटी, जाओ, घूम आओ न।"

लावण्य ने कहा, "मां! कुछ समय से सुरमा को पढ़ाने में बड़ी ढिलाई हुई है। मैंने उसके साथ बड़ा अन्याय किया है। कल रात ही निश्चय किया था कि आज से किसी तरह ढिलाई न होने पाएगी।" इतना कहकर लावण्य ने होंठ दबाकर मुख को कठोर कर लिया।

लावण्य के इस ज़िद्दी मिज़ाज से योगमाया परिचित हैं। इसलिए ज़्यादा दवाव डालने की हिम्मत नहीं हुई।

अमित ने भी नीरस कण्ठ से कहा, "मैं भी कर्तव्य करने जा रहा हूं; इन लोगों के लिए सब तैयारी कर रखनी है।"

इतना कहकर जाने के पहले वरामदे में स्तव्ध होकर खड़ा रहा। वोला, "वन्या! उस ओर देखो। पेड़ की ग्राड़ में से मेरे घर का छप्पर थोड़ा-थोड़ा दिखाई पड़ता है। एक वात तुम लोगों को नहीं वताई है; मैंने उस घर को खरीद लिया है। मकान-मालिक अवाक् था; सोचा होगा कि उस स्थान पर मैंने सोने की गुप्त खान की खोज कर ली है। दाम खूव चढ़के वसूल किए। वहां सोने की खान का पता तो लग ही गया था और वह पता सिर्फ मैं ही जानता हूं। मेरी जीर्ण कुटी का ऐश्वर्य सवकी आंखों से छिपा ही रहेगा।"

लावण्य के मुंह पर एक गंभीर विषाद की छाया फैल गई। वोली, "और दूसरों की वात तुम इतनी वढ़ा-चढ़ाकर क्यों सोचते हो? सव जान ही लेंगे न? ठीक तरह से जान लेना तो चाहिए ही। वैसा होने पर कोई अपमान करने का साहस नहीं करेगा।"

इस वात का कोई जवाव न देकर अमित वोला, "वन्या, मैंने निश्चय कर रखा है कि विवाह के वाद उस झोंपड़ी में आकर हम कुछ दिन रहेंगे। मेरा वह गंगा-तट का वाग, वह घाट, वह वटवृक्ष सव इसी घर में मिल गए हैं। तुम्हारा रखा हुआ मितालि नाम उसीको अच्छा लगता है।"

"उस घर से तुम आज निकल आए हो मीता! फिर किसी दिन यदि उसमें जाना चाहोगे तो देखोगे कि वहां तुम अंट नहीं पा रहे हो। पृथ्वी पर आज के दिन के घर में कल के दिन के लिए जगह नहीं रहती। उस दिन तुमने कहा था कि जीवन में मनुष्य की प्रथम साधना दरिद्रता की और द्वितीय साधना ऐश्वर्य की है, किन्तु तुम अन्तिम साधना की वात कहना भूल गए, वह है त्याग की साधना।"

"वन्या, वह तुम्हारे रवि ठाकुर की वात है। उसने लिखा है—शाहजहां आज अपने ताजमहल को भी पीछे छोड़ गया है। किन्तु एक वात तुम्हारे कवि के भेजे में नहीं आई और वह यह है कि हम सव तैयार

वस्तु से आगे बढ़ जाने, उसे पीछे छोड़ जाने के लिए ही सारी तैयारी, सारी चेष्टा करते हैं। विश्वसृष्टि में इसीको कहते हैं 'एवोल्यूशन' (विकास)। एक अनासृष्टि भूत कन्धे पर सवार होकर कहता है— 'सृष्टि करो'; सृष्टि करते ही भूत उतर जाता है, तब उस सृष्टि की भी ज़रूरत नहीं रह जाती। किन्तु उसे छोड़ जाना ही कोई चरम बात, कोई अन्तिम आदर्श नहीं है। जगत् में शाहजहां-मुमताज़ की अक्षय धारा बहती ही जा रही है। वे क्या एक आदमी-मात्र हैं? इसीलिए तो ताजमहल किसी दिन भी शून्य—सूना—नहीं हो सका। निवारण चक्रवर्ती ने सुहागरात पर एक कविता लिखी है; वह तुम्हारे कविवर के 'ताजमहल' का संक्षिप्त उत्तर है, पोस्टकार्ड पर लिखा हुआ :

तुम्हें छोड़ जाना है।

रात जब उठेगी हो उन्मना हमारी यह,
उज्ज्वल प्रभात-रथचक्र-रव-धारा में।
हाय री सुहागरात! क्रूर विरहदस्यु खड़ा,
मुझको डराता है बांधे मोहकारा में।
किन्तु वह तोड़ ले, चुरा ले धन-रत्न सब,
और वरमाला को भी छिन्न-भिन्न कर दे।
तुम तो रहोगी क्षयहीन ही सदा बनी,
भले जग-जाल में हमें वह खिन्न कर दे।
उत्सव तुम्हारा कभी बंद यह होगा नहीं,
नीरव न होगा प्रेम-मन्दिर तुम्हारा यह।
कौन कहता है तुम्हें छोड़कर चला गया,
सूना मन, सूना तन लेकर प्राणप्यारा वह।
वही सदा नव-नव रूप धर आता है,
तेरे आह्वान पर तेरा अलबेला है।
आते ही जाते हैं यात्री अनेक देखो,
द्वार पर तुम्हारे लगा जीवन का मेला है।
विश्व में है मृत्युहीन प्रेम, तुम शाश्वत हो,
अरी ओ सुहागरात! मैंने यह जाना है।

तुम्हें छोड़ जाता हूं परन्तु तुम साथ सदा
मेरे, यह खोना ही मेरा सब पाना है।
तुम्हें छोड़ जाना है । तुम्हें छोड़०॥

रवि ठाकुर केवल चले जाने की बात ही कहता है; रह जाने का गीत गाना जानता ही नहीं। बन्या, कवि क्या कहता है, उस दिन हम दोनों भी दरवाज़े पर थपकी देंगे, पर दरवाजा खुलेगा नहीं।"

"मेरी बात मानो मीता, आज सवेरे-सवेरे ही कवि की लड़ाई न छेड़ो। क्या तुम समझते हो कि पहले दिन से ही मैं नहीं समझ गई कि तुम्हीं निवारण चक्रवर्ती हो ? किन्तु तुम इन कविताओं में अभी से हमारे प्रेम की समाधि बनाना शुरू न करो, कम से कम उसके मरने तक तो प्रतीक्षा करो।"

लावण्य समझ चुकी है कि अमित आज व्यर्थ की बातें करके भीतर की किसी व्याकुलता को दबा देना चाहता है।

अमित भी समझ गया है कि काव्य का द्वन्द्व कल शाम को तो विरस नहीं हुआ, किन्तु आज सुबह से उसका सुर खण्डित हुआ जा रहा है। किन्तु लावण्य पर यह बात प्रकट हो गई, यह उसे अच्छा नहीं लगा। उसने ज़रा नीरस भाव से कहा, "तो जाता हूं। विश्व-जगत् में मेरे लिए भी काम है ; अभी होटल देखना है। देख रहा हूं कि उधर अभागे निवारण चक्रवर्ती की छुट्टी की मियाद भी खत्म हुई जा रही है।"

लावण्य ने अमित का हाथ पकड़कर कहा, "देखो मीता, तुम्हें मुझको सदा ही क्षमा करना होगा। अगर किसी दिन चले जाने का समय आए तो तुम्हारे पैरों पड़ती हूं, तुम नाराज़ होकर न जाना।" यह कहकर आंसुओं को छिपाने के लिए तेज़ी से दूसरे कमरे में चली गई।

अमित थोड़ी देर तक स्तब्ध-सा खड़ा रहा। उसके बाद धीरे-धीरे उदास मन से यूक्लिप्टस वृक्ष के नीचे चला गया। वहां देखा कि टूटे हुए अखरोट के छिलके पड़े हुए हैं। देखते ही उसके मन में कैसी एक व्यथा उमड़ने लगी। जीवन की धारा चलते-चलते अपने जो सब चिह्न छोड़ जाती है, उनकी तुच्छता ही सबसे अधिक करुणाजनक होती है। उसके बाद उसे दिखाई पड़ा कि घास पर एक किताब पड़ी हुई है—रवि ठाकुर

की 'वलाका'। उसके नीचे के पन्ने भीग गए हैं। एक वार मन में आया कि क्यों न जाकर दे आऊं, किन्तु लौटकर गया नहीं, अपनी पाकेट (जेव) में रख ली। होटल जाने को हुआ पर गया नहीं। उसी पेड़ के नीचे वैठ गया। रात के भीगे वादलों ने आकाश को खूब मांज दिया है। धूल से मुक्त हवा में चतुर्दिक् की छवि विलकुल स्पष्ट हो उठी है। पहाड़ एवं पेड़-पौधों के सीमान्त ऐसे जान पड़ते हैं मानो घन नील आकाश में खोद-कर अंकित किए गए हों, जैसे जगत् उसके विलकुल निकट आकर सहसा उसपर गिर पड़ा हो। आहिस्ता-आहिस्ता समय वीता जा रहा है; उसके भीतर भैरवी का सुर उठ रहा है।

लावण्य ने अव से खूव मन लगाकर काम करने की प्रतिज्ञा की थी; फिर भी जव उसने दूर से देखा कि अमित पेड़ के नीचे वैठा हुआ है तो फिर ठहर न सकी, छाती भीतर से कांप उठी, आंखों में आंसू छलछला उठे। नज़दीक आकर वोली, "मीता, तुम क्या सोच रहे हो?"

"इतने दिनों से जो कुछ सोचता आ रहा हूं, उसका विलकुल उलटा।"

"वीच-वीच में मन को विलकुल उलटकर देखे विना तुम स्वस्थ नहीं रह पाते। पर सुनूं तो कि तुम्हारी वह उलटी चिन्ता क्या है?"

"अव तक तुम्हें अपने मन में लिए-लिए मैं केवल घर वना रहा था—कभी गंगा-तट पर, कभी पहाड़ के ऊपर। आज इस प्रभात के प्रकाश में मन में एक दूसरा चित्र, उदासी से भरे हुए रास्ते का चित्र उभर रहा है—अरण्य की छाया-छाया से होता हुआ पहाड़ों के ऊपर जानेवाले मार्ग का चित्र। मेरे हाथ में लोहे के फलवाली एक लम्वी लाठी है और पीठ पर चमड़े के स्ट्रैप में वंधी एक चौकोर थैली है। तुम मेरे साथ चल रही हो। तुम्हारा नाम सार्थक है वन्या। जान पड़ता है, तुम मुझे वन्द घर से वाहर निकालकर पथ पर वहाए लिए जा रही हो। घर में वहुत लोग होते हैं; रास्ता होता है केवल दो प्राणियों तक।"

"डायमण्ड हार्वरवाला वगीचा तो चला ही गया, उसके वाद वह पचहत्तर रुपयेवाला घर भी विलीन हो गया। जाने दो। किन्तु चलने की राह पर विच्छेद की, अलग रहने की, व्यवस्था कैसे करोगे? जव शाम हुआ करेगी तो तुम एक पांथशाला में जाओगे और मैं दूसरी में

जाऊंगी ?"

"उसकी ज़रूरत नहीं पड़ेगी वन्या ! चलना स्वयं ही नूतन बनाए रखता है, पग-पग पर नया। पुराना होने का समय ही नहीं मिलता। बैठ रहना ही बुढ़ापा है।"

"हठात् यह ख्याल तुम्हारे मन में आया क्यों मीता ?"

"बताता हूं। सहसा मुझे शोभनलाल की एक चिट्ठी मिली। जान पड़ता है, उसका नाम तुमने सुना है—रायचन्द-प्रेमचन्द छात्रवृत्तिवाला नाम। भारतीय इतिहास के प्राचीन मार्गों का अनुसन्धान करने के लिए कुछ दिन हुए वह घर से बाहर निकल पड़ा है। वह अतीत के लुप्त पथ का उद्धार करना चाहता है। मेरी इच्छा है कि मैं भविष्य के पथ का आविष्कार करूं।"

लावण्य की छाती के अन्दर एकाएक जोर का धक्का लगा। उसने बातचीत में बाधा देकर अमित से कहा, "शोभनलाल के साथ, एक ही वर्ष, मैंने एम० ए० की परीक्षा दी थी। उसकी पूरी खबर सुनने की इच्छा होती है।"

"एक बार तो उसपर पागलपन सवार हुआ कि अफगानिस्तान के प्राचीन नगर कपिश के बीच से होकर जो पुराना रास्ता जाता था, उसकी खोज करेगा। उसी रास्ते से ह्यूनसांग ने भारत की तीर्थयात्रा की थी और उसके भी पहले उसी रास्ते अलेकज़ेण्डर—सिकन्दर—की रणयात्रा हुई थी। खूब मेहनत करके पश्तो पढ़ा और पठानी कायदा-कानून का अभ्यास किया। सुन्दर चेहरा, ढीला-ढाला कपड़ा पहने ठीक पठानों जैसा नहीं लगता, बल्कि पारसियों जैसा, ईरानियों जैसा लगता है। एक दिन मुझे आ पकड़ा कि फ्रांस में जो फ्रांसीसी विद्वान इस काम में लगे हुए हैं, उनके लिए परिचय-पत्र लिख दो। फ्रांस में रहते समय उनमें से किसीके पास मैंने अध्ययन किया था। मैंने तो पत्र लिख दिए, परन्तु भारत सरकार से उसे पासपोर्ट नहीं मिला। उसके बाद वह दुर्गम हिमालय के बीच बराबर मार्ग की खोज करता फिर रहा है—कभी कश्मीर तो कभी कुमायूं में। इस बार इच्छा हुई है हिमालय के पूर्वी प्रान्तों की छानबीन करने की। बौद्ध धर्म-प्रचार का रास्ता इस ओर से होकर कहां-कहां गया है, यही देखना चाहता है। उस पथोन्मादी की बात याद करके

मेरा मन भी उदास हो जाता है। किताबों में सिर्फ बातों का रास्ता ढूंढ़-ढूंढ़कर हम लोग अपनी आंखें खो बैठते हैं, और यह पागल निकला है मानव-विधाता के स्वयं अपने हाथ से लिखी हुई मार्गों की पोथी पढ़ने। जानती हो, मेरे मन में कैसा लगता है?"

"कैसा, बोलो।"

"प्रथम यौवन में किसी दिन शोभनलाल ने किसी कंकण पहने, चूड़ीवाले हाथ का धक्का खाया है, इसीलिए वह घर से रास्ते पर छिटक गया है। उसकी पूरी कहानी तो मुझे मालूम नहीं, परन्तु एक दिन की बात है कि मैं और वह अकेले थे। हम दोनों में बहुत-सी बातें होती रहीं, यहां तक कि रात आधी बीत गई। एकाएक जंगले के बाहर फूली हुई मौलश्री की आड़ से चांद निकल आया। ठीक उसी समय वह किसीके बारे में कहना चाहता था। नाम तो बताया नहीं, न कुछ विवरण ही दिया, किन्तु जरा-सी झलक देते-देते ही गला भारी हो गया और झटपट उठकर चला गया। इतना तो मैं समझ ही गया कि उसके जीवन में कोई अत्यन्त निष्ठुर बात बिंधी हुई है। रास्ता चलते-चलते उसी बात को वह पांवों से घिसकर मिटा देना चाहता है।"

लावण्य का ध्यान एकाएक उद्भिद्तत्त्व की ओर चला गया। वह झुककर घास में सफेद और हल्दी के रंगवाले एक वनफूल को देखने लगी और बड़े मनोयोग से उसकी पंखुरियों को गिनने की आवश्यकता उसे आ पड़ी।

अमित बोला, "समझीं बन्या! आज तुमने मुझे पथ की ओर धकेल दिया है।"

"किस तरह?"

"मैंने घर बनाया था। आज सुबह तुम्हारी बातों को सुनकर मन में आया कि तुम उसमें पग रखने में, प्रवेश करने में, कुण्ठित होती हो। आज दो महीने से मन ही मन घर सजाया है। तुमको पुकारकर कहा है, 'वधू! आओ, घर में आओ।' तुमने आज वधू की समस्त साज-सज्जा उतारकर फेंक दी और कहा, 'सखा! यहां जगह न होगी, हमारा सप्तपदीगमन सदा चलता रहेगा।'"

वनफूल की बाटनी (वनस्पति विद्या) और आगे नहीं बढ़ सकी।

एकाएक उठकर लावण्य ने क्लिष्ट स्वर में कहा, "मीता, अब बस, समय नहीं है।"

१४

धूमकेतु

इतने दिन बादों अमित को यह बात मालूम हुई कि लावण्य के साथ उसके विवाह-सम्बन्ध का हाल शिलांग के सभी बंगाली जानते हैं। गवर्नमेण्ट आफिस के बाबुओं का प्रधान आलोच्य विषय यह होता है कि उनके जीविका रूपी भाग्य-गगन में कौन ग्रह राजा हुआ और कौन मंत्री। पर उनकी आलोचना के बीच उनकी दृष्टि में आ पड़ा मानव-जीवन के ज्योतिर्मण्डल में एक युग्म-तारा का आवर्त्तन, अत्यधिक 'फ़ास्ट मैग्निटयूड' (तीव्र प्रसार) का एक आलोक। इसलिए उनके बीच पर्य-वेक्षकों की प्रकृति के अनुकूल इन दोनों प्रकाशमान ज्योतिष्कों के आग्नेय नाट्य की नाना प्रकार की व्याख्याएं फैल रही हैं।

पहाड़ पर हवा खाने आया हुआ एटर्नी कुमार मुकर्जी भी इस व्याख्या के बीच आ पड़ा। संक्षेप में कोई उसे 'कुमार मुख' और कोई 'मार मुख' कहता। सिसी-लिसी की मित्रमण्डली के भीतरी सदस्यों में वह नहीं था, परन्तु जाने-सुने या परिचित दल में ज़रूर था। अमित ने उसे 'धूमकेतु मुख' नाम दिया था। इसका एक कारण तो यह था कि वह इन लोगों के दल के बाहर का होते हुए भी बीच-बीच में इनके घर के रास्ते पर अपनी पूंछ फटकार जाता है। सभी अन्दाज़ लगाते हैं कि जो ग्रह उसे खास तौर पर अपनी ओर खींच रहा है, उसका नाम लिसी है। इस बात को लेकर सभी कौतुक का अनुभव करते हैं किन्तु स्वयं लिसी इससे क्रुद्ध एवं लज्जित है। इसीसे लिसी प्रायः तेज़ी के साथ उसकी पूंछ दबाकर चली जाती है। किन्तु इसके कारण धूमकेतु की पूंछ या मूंछ का कोई नुकसान हुआ दिखाई नहीं पड़ता।

शिलांग के घाट-बाट में चलते हुए कभी-कभी अमित दूर से कुमार मुख को देखता है। उसे न देख पाना ही कठिन है। आज तक

विलायत न जाने पर भी वह विलायती कायदे का उत्कट रूप में अनुसरण करता है। मुंह में सदा एक मोटा चुरुट रहता है और यही उसके धूमकेतु मुख नाम का मुख्य कारण है। अमित उससे दूर ही रहने की कोशिश करता है और अपने को इस भुलावे में भी रखता है कि धूमकेतु यह बात नहीं जानता। किन्तु देखकर भी न देखना एक बड़ी विद्या की बात है। चोरी-विद्या की तरह न पकड़े जाने में ही उसकी सार्थकता का प्रमाण है। उसमें प्रत्यक्ष दृश्य को पूरी तरह पार करके देखने की पारदर्शिता होनी चाहिए।

कुमार मुख ने शिलांग के बंगाली समाज से ऐसी अनेक बातें इकट्ठी की हैं जिनपर मोटा शीर्षक दिया जा सकता है—'अमित राय का अमिताचार।' जो मुंह से सबसे ज्यादा निन्दा करते हैं वे ही मन ही मन सबसे ज्यादा रस-भोग करते हैं। यकृत (लीवर) का विकार ठीक करने के लिए कुमार का कुछ दिन यहां रहना निश्चित हुआ था, किन्तु अफवाह को दूर तक फैलाने के उत्साह में वह पांच ही दिन के अन्दर कलकत्ता लौट गया। वहां जाकर अमित के बारे में अपनी चुरुट के धुएं-सी अत्युक्तियां कर-करके उसने सिसी-लिसी की मण्डली में कौतुक और कौतूहल की एक विभीषिका, एक आफत-सी खड़ी कर दी।

बुद्धिमान पाठकों ने अब तक समझ लिया होगा कि सिसी देवता का वाहन है केटी मित्तिर का भाई नरेन। इधर बात चली है कि उसकी इतने दिनों की एकनिष्ठ वाहन-दशा अब विवाह की दशम दशा में बदलनेवाली है। सिसी भी मन ही मन राज़ी है। किन्तु ऊपर से ऐसा भाव दिखाती है कि राज़ी नहीं है और ऐसा करके उसने एक प्रदोष-अन्धकार फैला रखा है। नरेन ने तय कर रखा था कि वह अमित की स्वीकृति लेकर इस संशय को, इस अनिश्चय को पार कर जाएगा, किन्तु अमित हम्बग (मूर्ख) न तो कलकत्ता लौटता है, न चिट्ठी का जवाब देता है। अंग्रेज़ी के जितने भी गर्हित शब्दभेदी वाक्य उसे याद आए, उन सबको प्रकट या स्वगत रूप में वह मुंह से निकाल चुका है। यहां तक कि तार की सहायता से बेतार-वाक्य भी शिलांग भेजने में वह नहीं चूका, किन्तु उदासीन नक्षत्र की ओर छोड़ी हुई उद्धत आतिशबाज़ी की तरह उसकी दाहरेखा उड़ गई, विलीन हो गई। अन्त में सबकी राय से तय

हुआ कि अवस्था की मौके पर जाकर जांच कर लेना जरूरी है। सर्वनाश के स्रोत में डूबते हुए अमित की चोट भी यदि कहीं दिखाई पड़ जाए तो तुरन्त किनारे खींच लाकर उसकी रक्षा करनी ही होगी। इस विषय में उसकी अपनी सगी वहिन सिसी से भी पराई वहिन केटी का उत्साह ज्यादा है। 'हमारा धन विदेश में जाकर लुप्त हो रहा है' कहकर पालिटिक्स (राजनीति) में जिस प्रकार का आक्षेप किया जाता है, केटी मित्तिर का भाव भी कुछ उसी प्रकार का, उसी जाति का है।

नरेन मिट्टर बहुत दिनों तक यूरोप में था। ज़मींदार का लड़का था। आय की कोई चिन्ता तो थी नहीं, न व्यय का कोई ख्याल था। विद्यार्जन की भी कोई खास भावना न थी। समय और पैसा खर्च करने की ओर ही उसने ज़्यादा ध्यान दिया था। आर्टिस्ट—कलाकार—कहकर अपना परिचय देने से वहां एक ही साथ विना किसी ज़िम्मेदारी के स्वतंत्रता और अकारण सम्मान दोनों प्राप्त हो जाते हैं। इसीलिए कला-सरस्वती की खोज में यूरोप के बड़े-बड़े शहरों के वोहेमियन[1] मुहल्लों में जाकर रहा है। कुछ दिनों की चेष्टा के बाद स्पष्टवक्ता हितैषियों के कठोर अनुरोध पर उसने तस्वीर वनाने का काम छोड़ दिया है; अब चित्रकला-विशेषज्ञ के रूप में अपना परिचय देता फिरता है। वह चित्रकला को फलान्वित तो नहीं कर सकता, हां, दोनों हाथों से उसे मसल ज़रूर सकता है। अपनी मूंछों के किनारों को फ्रेंच स्टाइल से कण्टकित वना लिया है और सिर के घने लम्बे वालों के प्रति यत्नपूर्वक उपेक्षा का व्यवहार करता है। उसका चेहरा वैसे अच्छा है, परन्तु उसे और अच्छा, और सुन्दर वनाने की वहुमूल्य साधना के कारण उसकी दर्पणयुक्त टेवल पेरिस के विलासद्रव्यों, शृंगार की चीजों से भरी रहती है। उसकी मुंह धोने की टेवल के उपकरण दशानन के लिए भी अधिक होंगे। कीमती 'हवाना' सिगार के दो-चार कश लगाने के वाद ही उन्हें फेंक देना और हर महीने फ्रेंच धुलाईगृह से पहनने के कपड़े धुलवाकर पोस्ट-पार्सल से मंगवाना इत्यादि वातों को देखते हुए उसके आभिजात्य के विषय में किसी प्रकार का सन्देह करने की

---

१. सामाजिक वन्धनों की मर्यादा को उखाड़ फेंकनेवाले कलाकार

हिम्मत किसे हो सकती है ! यूरोप की श्रेष्ठ दर्ज़ीशालाओं की वहियों में पटियाला कपूरथला के नरेशों के विवरण के साथ उसकी भी देह की नाप और नम्वर लिखे मिलेंगे। उसकी स्लैंग—विकृत—अंग्रेज़ी का उच्चारण विजड़ित और विलम्बित होता है और अधखुले नयनों के अलस कटाक्ष का योग भी उसके साथ रहता है। इस विषय के अनुभवियों का कहना है कि इंग्लैंड के अनेक नीले रक्तवाले अमीरों के कण्ठ-स्वर में इसी प्रकार की गद्‌गद जड़ता पाई जाती है। इसके अलावा घुड़दौड़वाली वदज़वानी और विलायती शपथों की दुर्वाक्य रूपी सम्पत्ति में भी वह अपने दल के लोगों में आदर्श पुरुष है।

केटी मिट्टर का असली नाम केतकी है। उसका चाल-चलन वड़े भाई के कायदे रूपी कारखाने के भवके में शोधित तीसरी वार निकाले हुए तेज़ विलायती एसेंस के समान है। साधारण वंगाली लड़कियों के लम्वे वाल के यश को कुचलने के लिए ही उसने उसपर कैंची चलवा दी है, जिससे उसका जूड़ा पूंछहीन मेढक के अनुकरण में ऊपर उछलता रहता है। मुख की स्वाभाविक गोराई पर वर्णप्रलेप का एनामेल—रंगसाज़ी—है। जीवन की आदिलीला में, वचपन में, केटी की काली आंखों में स्निग्धता थी, अव ऐसा लगता है कि वह सवको देख ही नहीं पाती। देख भी लेती है तो ध्यान नहीं देती, और कभी ध्यान देती भी है तो उस दृष्टि में अधखुली छुरी की झलक होती है। छोटी उम्र में उसके होंठों पर सरल माधुर्य था, परन्तु अव वार-वार टेढ़ा करते रहने के कारण उनमें टेढ़े अंकुश जैसा भाव स्थायी हो गया है। किशोरियों के वेश-वर्णन में मैं अनाड़ी हूं; उसकी परिभाषा मैं नहीं जानता। मोटे तौर पर आंख से यह दिखाई देता है कि ऊपर सांप की केंचुल जैसा पतला फरफराता आवरण है जिससे अन्दर के कपड़े से एक दूसरे रंग की झलक मिलती रहती है। छाती का वहुतेरा भाग खुला हुआ है। खुली हुई दोनों वांहों को कभी टेवल पर, कभी कुर्सी के हत्थे पर और कभी आपस में जोड़कर यत्न से एक विशेष भंगिमा में शिथिल छोड़ रखने की साधना में पक्की है। जव सुमार्जित और रमणीय नखोंवाली दो अंगुलियों के वीच दवाकर सिगरेट पीती है, तो ऐसा जान पड़ता है कि यह धूम्रपान धूम्रपान के लिए उतना नहीं है जितना एक सजावट, एक अलंकरण के रूप

में है। जो चीज़ सबसे ज़्यादा दुश्चिन्ता उत्पन्न करती है, वह है उसके ऊंची एड़ीवाले जूतों की कुटिल भंगिमा, मानो बकरी-जाति के जीव के आदर्श को भुलाकर मनुष्य के पांवों की गढ़न देते समय सृष्टिकर्ता गलती कर गए हों और अब एवोल्यूशन की, क्रमविकास की उस त्रुटि का संशोधन मोची द्वारा दी हुई पदोन्नति की वक्रता से धरती को पीड़ित करके चलने के रूप में किया जा रहा हो।

सिसी अभी तक मंझधार में है। अभी तक अन्तिम डिग्री उसे नहीं मिली है, किन्तु डवल प्रमोशन लेती चली जा रही है। उच्च हास्य, अजस्त्र खुशी और अनर्गल बातचीत उसमें सदा उमड़-उमड़ उठती है, उसे अस्थिर किए रहती है। उपासकमण्डली में उसके इन गुणों का विशेष सम्मान है। राधिका की वय:सन्धि के वर्णन में यह बात मिलती है कि उसके भाव कहीं परिपक्व हैं, कहीं कच्चे हैं। इसकी भी वही हालत है। ऊंची एड़ी के जूतों में युगान्तर का जय-तोरण तो आ गया है, किन्तु सिर के केश-प्रसाधन में अभी वही अतीत युग चल रहा है। पांवों की ओर साड़ी की लम्बाई दो-तीन इंच कम है, किन्तु ऊपर के वस्त्रों में असंस्कृति की सीमा अभी तक लज्जा से प्रभावित है। वेमतलव दस्ताने पहनने का अभ्यास है, किन्तु अभी तक एक हाथ की जगह दोनों हाथों में चूड़ियां पड़ी हैं। सिगरेट का कश खींचने में अब सिर नहीं चकराता, किन्तु पान खाने की आसक्ति अब भी प्रबल है। बिस्कुट के टिन में भरकर कोई उसे अचार-अमरस भेज दे तो उसे आपत्ति नहीं होती। क्रिसमस के प्लम पूडिंग और पर्व-त्योहार की पीठी से बनी चीज़ों, इन दोनों, में से दूसरी पर ही उसकी लोलुपता कुछ अधिक है। फिरंगी नाचवाली से नृत्य उसने सीखा है, परन्तु नृत्यसभा में जोड़ी बनाकर घूम-घूमकर नाचने में उसे कुछ संकोच होता है।

अमित के सम्बन्ध में अफवाह सुनकर वे बड़ी उद्विग्न हो गई और चली आई। विशेषत: उनकी परिभाषा के अनुसार की हुई श्रेणियों में लावण्य एक गवर्नेस, एक मास्टरनी-मात्र है। अपनी श्रेणी के पुरुषों की जात मारने के लिए ही उसका 'स्पेशल क्रियेशन' (विशेष सृष्टि) है। उनके मन में ज़रा भी सन्देह नहीं कि सम्पत्ति और सम्मान के लोभ से ही लावण्य ने अमित को कसकर जकड़ लिया है; उसे छुड़ाने के लिए स्त्रियों

को ही अपनी जादू उतारने की पटुता दिखानी पड़ेगी। चतुर्मुख ने अपने चार जोड़े नयनों से स्त्रियों की ओर कटाक्षपात एवं पक्षपात दोनों एक साथ ही किया होगा इसीलिए स्त्रियों के वारे में विचार करने में उन्होंने पुरुषों को विलकुल ही अवोध वनाकर गढ़ा है। इसीसे स्वजाति के मोह से मुक्त, आत्मीय नारियों की सहायता पाए विना, अनात्मीय नारियों के मोह-जाल से पुरुषों का उद्धार पाना इतना कठिन है।

आपाततः उद्धार की यह प्रणाली कैसी हो, इसी वात को लेकर दोनों नारियों ने आपस में कुछ निश्चय किया है। यह भी तय हो गया है कि पहले से अमित को इसका कोई पता न लगने देना चाहिए और सर्वप्रथम शत्रुपक्ष और रणक्षेत्र को चलकर देख लेना चाहिए। उसके वाद ही देखा जाएगा कि मायाविनी में कितनी ताकत है।

आते ही उन्होंने देख लिया कि अमित के ऊपर एक घना ग्रामीण रंग चढ़ा हुआ है। इसके पहले भी अपने दल के साथ अमित की भावनाओं का कोई मेल-जोल न था। फिर भी वह उस समय एक प्रखर नागरिक था, मंजा-धुला और झकझक करता हुआ। अव इस खुली हवा में उसका रंग कुछ मैला तो हुआ नहीं है, हां, सव मिलाकर उसपर पेड़-पौधों का रंग चढ़ गया मालूम पड़ता है। इससे वह कुछ कच्चा हो गया है और इन लोगों के मत से कुछ मूर्ख भी। व्यवहार में वह साधारण आदमी के समान हो गया है। पहले वह जीवन के समस्त विषयों में हंसी के हथियार का प्रयोग करने को तैयार रहता था; अव जैसे उसका वह शौक मिट-सा गया है। इसे इन लोगों ने उसके अवसानकाल का लक्षण समझ लिया है।

सिसी ने एक दिन उससे स्पष्ट ही कहा, "दूर से हम लोगों ने समझा था कि तुम शायद खासिया होने की तरफ ढुलक रहे हो। अव देख रही हूं कि तुम वह हो गए हो जिसे 'ग्रीन' कहा जाता है—यहां के पाइनवृक्षों की तरह। संभव है, आगे से स्वास्थ्यकर अवस्था में हो, परन्तु पहले जैसे 'इण्टेरेस्टिंग' (दिलचस्प) नहीं रहे।"

अमित ने वड्‌र्सवर्थ[1] की कविता में से नजीर देते हुए कहा, "प्रकृति

---

१. अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि

के संसर्ग में रहते-रहते देह पर, मन और प्राण पर निर्वाक्-निश्चेतन पदार्थ की छाप लग ही जाती है, जिसे कवि ने 'म्यूट इनसैंन्सेट थिंग्ज़' कहा है।

सुनकर सिसी सोचने लगी, निर्वाक्-निश्चेतन पदार्थ को लेकर हमें कोई शिकायत नहीं; जो बहुत अधिक सचेतन हैं और बात करने की मधुर प्रगल्भता में चतुर हैं, उन्हींको लेकर हमें चिन्ता है।

इन लोगों को आशा थी कि लावण्य के बारे में अमित स्वयं ही बात छेड़ेगा। एक दिन बीता, दूसरा दिन बीता, तीसरा दिन भी गया, अमित उस विषय में बिलकुल ही मौन है। सिर्फ इतनी बात वे अनुमान से समझ सकीं कि अमित की साध की तरणी सम्प्रति ज़्यादा भंवर में पड़ी हुई है। इनके बिछौने से उठकर तैयार होने के पहले ही अमित कहीं से घूम-घामकर वापस आ जाता है। उसके बाद उसका मुंह देखकर मालूम पड़ता है कि तूफानी हवा में जैसे केले के पत्ते फटकर, टुकड़े-टुकड़े होकर झूलते रहते हैं, वैसे ही उसकी भावनाओं के सैकड़ों टुकड़े हो गए हैं। और भी चिन्ता की बात यह है कि किसी-किसीने उसके बिछौने पर रवि ठाकुर की किताब पड़ी हुई देखी है। भीतरी पन्ने में लावण्य के नाम का 'ला' अक्षर लाल रोशनाई से कटा हुआ है। जान पड़ता है, नाम के पारस पत्थर ने ही चीज़ का दाम बढ़ा दिया है।

अमित क्षण-क्षण में बाहर चला जाता है। कहता है—भूख संग्रह करने जा रहा हूं। भूख कहां जाने से जगती है, और उसकी भूख तो खूब प्रबल है, यह दूसरों से छिपा नहीं था। किन्तु वे ऐसा भाव दिखाते जैसे कुछ जानते ही न हों और क्षुधा बढ़ाने के सिवा शिलांग की हवा में जैसे और कुछ भी न हो। सिसी मन ही मन हंसती है; केटी मन ही मन जलती है। अमित के लिए अपनी समस्या ही इतनी जटिल हो रही है कि बाहर की किसी चंचलता पर ध्यान देने की शक्ति ही उसमें नहीं रह गई है। इसीसे वह निःसंकोच इन दोनों सखियों से कह जाता—एक जलप्रपात, एक झरने की खोज में जा रहा हूं। किन्तु वह समझ ही नहीं पाता कि यह प्रपात, यह झरना किस श्रेणी का है और उसकी गति किस ओर है, इस बात को लेकर दूसरों के मन में कुछ धोखा या संशय भी हो सकता है। आज कह गया है कि एक जगह संतरे के मधु

का सौदा करने जा रहा हूं। दोनों लड़कियों ने अत्यन्त निरीह भाव से सरल भाषा में कहा, 'इस अपूर्व मधु के बारे में हमारे मन में भी दुर्दमनीय उत्सुकता है, हम भी तुम्हारे साथ चलना चाहती हैं।' अमित ने कहा, 'मार्ग दुर्गम है, वहां कोई सवारी जा नहीं सकती।' कहकर और आलोचना के प्रथम भाग को तोड़कर तुरन्त भाग खड़ा हुआ। इस मधुकर के डैनों की चंचलता देखकर दोनों सखियों ने स्थिर किया कि अब और देर न करके आज ही संतरे के बाग पर धावा बोल देना चाहिए। उधर नरेन घुड़दौड़ के मैदान को चला गया है; सिसी को भी साथ ले जाने के लिए बड़ा आग्रह कर रहा था। सिसी नहीं गई। इस इन्कार को झेलने में बेचारे को कितना शम-दम या संयम करना पड़ा होगा इसे किसी दर्दी के सिवा कौन जान सकता है!

१५

व्याघात

दोनों सखियों ने योगमाया के बगीचे का बाहरी दरवाजा पार किया तो उन्हें वहां कोई नौकर-चाकर दिखाई न पड़ा। गाड़ी के बरामदे में पहुंचने पर दिखाई पड़ा कि मकान के चबूतरे पर एक छोटी टेबल के सहारे एक शिक्षयित्री और उसकी छात्रा मिलकर पढ़ाई कर रही हैं। समझते देर न लगी कि इनमें से बड़ी लावण्य है।

केटी खट्खट् ऊपर चढ़ गई और अंग्रेजी में बोली, "मुझे दुःख है।"

लावण्य कुर्सी छोड़कर खड़ी हुई और बोली, "आप लोग किसे चाहती हैं?"

केटी ने क्षण-भर में प्रखर झाड़ू जैसी अपनी नज़र लावण्य के सिर से पांव तक फिराकर कहा, "मिस्टर आमिट्राए इस जगह आए हैं या नहीं, यही जानने आई थी।"

लावण्य हठात् समझ ही न सकी कि यह आमिट्राए किस जाति का प्राणी है। बोली, "उनको तो हम नहीं जानतीं।"

बिजली की तरह चकित आंखों से दोनों सखियों में कुछ इशारे-

वाज़ी हुई और मुंह पर तिरछी मुस्कान का एक रेखा फैल गई। केटी ने झुंझलाकर सिर हिलाते हुए कहा, "हम तो जानती थीं कि इस घर में उनका आना-जाना है--oftener than is good for him."[1]

उनका भाव देख लावण्य चौंक पड़ी और समझ गई कि वे कौन हैं, और उससे कैसी गलती हो गई। अप्रस्तुत होकर बोली, "कर्ता मां को बुलाए देती हूं, उनसे मालूम हो जाएगा।"

लावण्य के जाते ही केटी ने सुरमा से पूछा, "तुम्हारी टीचर हैं?"

"हां।"

"नाम लावण्य है?"

"हां।"

"गॉट मैचेस?"

हठात् दियासलाई की क्या आवश्यकता पड़ी, इसका कुछ अन्दाज़ न लगा सकने के कारण सुरमा बात का कुछ मतलब ही न समझ सकी, सिर्फ उनके मुंह की ओर देखती रही।

केटी ने पूछा, "दियासलाई है?"

सुरमा दियासलाई की डिब्बी उठा लाई। केटी ने सिगरेट जलाकर उसका कश लगाते-लगाते पूछा, "अंग्रेज़ी पढ़ती है?" सुरमा स्वीकृतिसूचक सिर हिलाकर तेज़ी से घर में चली गई। केटी ने कहा, "गवर्नेस के पास रहकर लड़की ने और जो भी सीखा हो, पर मैनर्स (शिष्टाचार) नहीं सीखे।"

इसके बाद दोनों सखियों में टीका-टिप्पणी चलने लगी। 'फेमस लावण्य! डिलीशस! शिलांग पर्वत को बालकनी बना डाला है; भूकम्प ने अमिट के हृदय रूपी करार को फाड़कर रख दिया है, इस ओर से उस ओर तक। सिली! मेन आर फनी।"

सिसी अट्टहास कर उठी। इस हंसी में उदारता थी। क्योंकि पुरुष प्राणी का अबोध होना सिसी के लिए आक्षेप और अनुताप का कारण कभी नहीं बना। उसके कारण तो पथरीली ज़मीन में भी भूकम्प हुआ है, वह टुकड़े-टुकड़े हो गई है। किन्तु यह दुनिया से अलग कैसा व्यापार है। एक तरफ केटी जैसी लड़की है और दूसरी ओर वह अद्भुत बाने से

१. उससे अधिक जितना उनके लिए ठीक है।

कपड़ा पहननेवाली गवर्नेस है। मुंह में मक्खन देने से न गलेगा, जैसे भीगी हुई पाटली हो। पास बैठने से मन पर बरसाती बिस्कुट की भांति फफूंद पड़ जाते हैं। अमिट न जाने कैसे उसे एक मिनट के लिए भी सहन करता है!

"सिसी! तुम्हारे दादा—बड़े भाई—का मन सदैव पांव ऊपर की ओर करके चलता है। न जाने दुनिया से अलग किस बुद्धि से उन्होंने इस लड़की को सहसा 'एंजेल' (देवी) समझ लिया है!" इतना कहकर टेबल पर रखी एलजब्रा की पुस्तक के सहारे उसने सिगरेट रख दी और अपनी रुपहली ज़ंजीरवाली प्रसाधन की थैली निकालकर अपने मुंह पर थोड़ा पाउडर लगाया, फिर अंजन की पेंसिल से भवों की रेखाएं उभार दीं।

भाई की ज्ञानहीनता पर सिसी कोअधिक क्रोध नहीं आता, बल्कि भीतर ही भीतर कुछ स्नेह उमड़ता है। सारा गुस्सा पुरुषों की मुग्ध-नयन-विहारिणी बनी हुई 'एंजेलों'—देवियों—पर पड़ता है। भाई के सम्बन्ध में सिसी की इस कौतुकपूर्ण उदासीनता पर केटी का धैर्य भंग हो जाता है। पकड़कर झकझोर देने की इच्छा होती है।

इसी बीच सफेद गरद की साड़ी पहने योगमाया बाहर आईं। लावण्य नहीं आई। केटी के साथ एक 'टैबी' नाम का कुत्ता आया था जिसके बाल उसकी आंखों तक को ढक-से रहे थे। एक बार सूंघकर उसने लावण्य एवं सुरमा का कुछ परिचय पा लिया था। योगमाया को देखते ही उसके मन में कुछ उत्साह आ गया। झटपट जाकर योगमाया की निर्मल साड़ी पर अपने दोनों पांवों से पंकिल स्वाक्षर बनाकर अपनी कृत्रिम प्रीति का परिचय दे दिया। सिसी गला पकड़कर उसे खींच लाई केटी के पास। केटी ने उसकी नाक पर उंगली मारकर कहा, "नॉटी डाग?"

केटी कुर्सी से उठी भी नहीं। सिगरेट पीती हुई निर्लिप्त तिरछी नज़र से गर्दन टेढ़ी किए योगमाया को देखती रही। योगमाया पर उसका क्रोध लावण्य से भी अधिक है। उसकी धारणा है कि लावण्य के इतिहास में कोई दोष है और योगमाया ही मौसी बनकर अमित के साथ उसे बांध देने की चाल चल रही है। पुरुष-प्राणी को ठगने के लिए ज़्यादा अक्ल

की ज़रूरत नहीं पड़ती ; विधाता ने बनाते समय स्वयं अपने हाथों से उनकी आंखों पर पट्टी बांध दी है।

सिसी ने ज़रा आगे बढ़कर नमस्कार जैसा कुछ करते हुए योगमाया से कहा, "मैं सिसी हूं, अमी की बहिन।"

योगमाया ज़रा हंसकर बोलीं, "अमी मुझे मौसी कहता है, उस सम्बन्ध से मैं तुम्हारी भी मौसी हुई बेटी!"

केटी के ढंग देखकर योगमाया ने उसकी ओर ध्यान ही न दिया। सिसी से बोली, "आओ बेटी, कमरे में चलकर बैठें।"

सिसी बोली, "अभी समय नहीं है, केवल पता लेने आई थी कि अमी आए हैं या नहीं।"

योगमाया ने कहा, "अभी तक तो नहीं आया।"

"कब आएंगे, जानती हैं ?"

"ठीक नहीं बता सकती, अच्छा मैं पूछकर आती हूं।"

केटी अपने स्थान पर बैठी हुई तेज़ आवाज़ में बोली, "जो मास्टरनी इस जगह बैठी पढ़ा रही थी, उसने तो ऐसा जनाया जैसे अमिट को बिलकुल जानती ही नहीं।"

योगमाया सिटपिटा गईं। समझ लिया कि कहीं कोई गलतफहमी हो गई है। यह भी समझ लिया कि इनके निकट सम्मान-रक्षा मुश्किल है, तुरन्त अपने मौसीपन को हटाते हुए बोलीं, "सुना है, अमित बाबू आप लोगों के होटल में ही रहते हैं, उनकी खबर आप लोगों को ही होनी चाहिए।"

केटी ज़रा कुछ स्पष्ट हंसी हंस पड़ी। उसे भाषा में कहा जाए तो कहना पड़ेगा, 'छिपा सकती हो, पर चकमा नहीं दे सकतीं।'

असल बात यह है कि शुरू से ही लावण्य को देखकर और अमी को वह नहीं जानती, यह सुनकर केटी मन ही मन आग हो रही थी। किन्तु सिसी के मन में केवल आशंका है, ज्वाला नहीं है ; योगमाया के सुन्दर मुख की गंभीरता उसे अपनी ओर खींचती है। इसीलिए जब उसने देखा कि केटी उनकी स्पष्ट अवज्ञा करके कुर्सी से नहीं उठी, तो उसके मन में एक प्रकार का संकोच हुआ किन्तु किसी बात में केटी के विरुद्ध जाने का साहस भी नहीं हुआ क्योंकि सेडीशन (विद्रोह) को दमन

करने में केटी वड़ी तेज़ है और ज़रा भी विरोध सहन नहीं कर सकती। कर्कश व्यवहार करने में उसे संकोच नहीं होता। अधिकांश मनुष्य डरपोक होते हैं, अकुण्ठित व्यवहार के आगे वे हार मान लेते हैं। अपनी अजस्र कठोरता पर केटी को एक तरह का अभिमान है। इसीलिए जिसे वह 'मिठमुंही भलमनसी' कहती है उसे यदि अपने मित्रों में से किसीमें देखती है, तो उसे परेशान कर डालती है। रूढ़ता को, कठोरता को वह निष्कपटता कहकर उसकी वड़ाई किया करती है। जो लोग उसकी इस रूढ़ता की मार से संकुचित हैं, वे किसी प्रकार उसे प्रसन्न रखने की चेष्टा करके जान छुड़ाते हैं। सिसी भी ऐसे ही लोगों में है। वह मन ही मन केटी से जितना भय करती है, उतनी ही उसकी नकल करती है, दिखाना चाहती है कि वह भी कमज़ोर नहीं है। पर सदा ऐसा कर नहीं पाती। केटी समझ गई कि उसके वर्ताव के विरुद्ध सिसी के मन में कहीं मुंह-छिपाए कोई आपत्ति छिपी हुई है। इसीलिए उसने निश्चय कर लिया कि सिसी के इस संकोच को योगमाया के सामने कड़ाई के साथ तोड़ देना होगा। उसने कुर्सी से उठकर एक सिगरेट निकाली और सिसी के मुंह में खोंस दी। अपने मुंह में जलती सिगरेट से सिसी की सिगरेट जलाने के लिए अपना मुंह आगे कर दिया। सिसी को इन्कार करने की हिम्मत नहीं हुई। कानों के नीचे कुछ सुर्खी आ गई, फिर भी ज़बरदस्ती उसने ऐसा भाव दिखाया कि जो लोग उसकी पाश्चात्य सभ्यता की नकल पर ज़रा भी भौं टेढ़ी करते हैं, उनकी अवज्ञा करने को वह तैयार है।

ठीक इसी समय अमित आ गया। लड़कियां तो अवाक् रह गईं। होटल से जब वह निकला था तो उसके सिर पर फैल्ट हैट और शरीर पर विलायती कुर्ता था। और अब दिखाई दे रहा है कि धोती पहने और शाल ओढ़े हुए है। इस वेशान्तर का अड्डा उसका वही झोंपड़ा था। वहां पुस्तकों का एक शेल्फ और कपड़ों का एक सन्दूक है और है योगमाया की दी हुई एक आरामकुर्सी। होटल में दोपहर का भोजन करने के बाद वह वहीं जाकर आश्रय लेता है। आजकल लावण्य का कठोर शासन है; सुरमा को पढ़ाने के समय जलप्रपात या संतरे की खोज में किसीको प्रवेश नहीं करने दिया जाता। इसलिए तीसरे पहर साढ़े चार बजे की चाय-पान-गोष्ठी के पहले इस घर में किसी प्रकार की शारीरिक या

मानसिक प्यास बुझाने का मौका अमित के लिए नहीं था। किसी तरह समय काटकर और कपड़े बदलकर निर्दिष्ट समय पर वह यहां आता था।

आज होटल से निकलने के पहले ही कलकत्ता से उसकी अंगूठी आ गई। यह अंगूठी वह लावण्य को किस तरह पहनाएगा, इन सबकी कल्पना वह देर तक बैठे-बैठे करता रहा है। आज उसका एक विशेष दिन है। इस दिन को ड्योढ़ी पर बिठाए नहीं रखा जा सकता। आज सब काम बन्द हो जाना चाहिए। मन ही मन निश्चय कर रखा था कि जिस जगह बैठी लावण्य पढ़ा रही होगी उसी जगह जाकर कहूंगा, 'किसी दिन हाथी पर चढ़कर बादशाह आया था, किन्तु दरवाज़ा छोटा होने के कारण, सिर न झुकाना पड़े, इस भय से लौट गया, नये बने हुए महल में उसने प्रवेश नहीं किया। आज हमारा एक महादिन आया है, किन्तु तुमने अपने अवकाश का द्वार छोटा कर रखा है। उसे तोड़ दो जिससे राजा सिर उठाए हुए तुम्हारे घर में प्रवेश करे।'

अमित मन में यह भी तय करके आया था कि जाकर लावण्य से कहेगा, 'ठीक समय पर आने का नाम ही पंक्चुअलिटी है किन्तु घड़ी का समय ठीक समय नहीं है; घड़ी समय का नम्बर जानती है परन्तु समय का मूल्य वह कैसे जान सकती है!'

अमित ने बाहर की तरफ ताककर देखा—मेघ से आकाश धुंधला हो रहा है; आलोक का चेहरा शाम पांच-छः बजे जैसा हो रहा है (रोशनी फीकी पड़ गई है)। अमित ने इस भय से घड़ी नहीं देखी कि कहीं वह अपने असभ्य इशारे से आकाश का प्रतिवाद न कर दे, ठीक वैसे ही जैसे बहुत दिनों के रोगी बालक की मां बच्चे के शरीर को ज़रा ठंडा देख भयवश थर्मामीटर लगाने का साहस नहीं करती। आज अमित निर्दिष्ट समय से बहुत पहले ही आ गया है। कारण यह है कि दुराशा निर्लज्ज होती है।

बरामदे के जिस कोने में बैठकर लावण्य अपनी छात्रा को पढ़ाती है, रास्ते से आते हुए उसपर नज़र पड़ती है। आज उसने देखा कि वह जगह खाली है। मन आनन्द से उछल पड़ा। इतनी देर बाद घड़ी की ओर देखा—अब भी तीन बजकर बीस मिनट ही हुए हैं। उस दिन उसने

लावण्य से कहा था, 'नियम-पालन मनुष्य का और अनियम देवता का कार्य है। इस मृत्युलोक में हम नियमों की साधना इसलिए करते हैं कि स्वर्ग में हमें अनियम रूपी अमृत मिले। वही स्वर्ग बीच-बीच में यदि मृत्युलोक में दिखाई पड़े, तो नियम तोड़कर उसका स्वागत करना चाहिए।' तब उसे आशा हुई थी कि लावण्य ने नियम भंग करने के महत्त्व को समझ लिया। जान पड़ता है कि उसके मन को भी इस विशेष दिन ने छू दिया है, जिससे साधारण दिनों की रोक आज हट गई है।

परन्तु पास पहुंचकर देखा कि योगमाया अपने कमरे के बाहर स्तंभित होकर खड़ी हैं और सिसी अपने मुंह की सिगरेट केटी के मुंह में लगी सिगरेट से सुलगा रही है। उसे समझते देर न लगी कि यह अनादर जान-बूझकर किया जा रहा है। टैबी कुत्ता अपनी प्रथम मैत्री के उच्छ्वास में बाधा पाकर केटी के पांवों के पास सोकर ज़रा नींद लेने की चेष्टा कर रहा था। अमित के आने से वह उसका अभिनन्दन करने के लिए फिर असंयत हो उठा। सिसी ने उसे रोककर समझा दिया कि सद्भावना प्रकट करने की इस प्रणाली की यहां कोई इज़्ज़त न होगी।

दोनों सखियों को ज़रा भी देखे बिना दूर से ही मौसी कहकर अमित ने पुकार लगाई और फिर झुककर उनके पैरों की धूलि ग्रहण की, यद्यपि इस समय इस प्रकार प्रणाम करने का कायदा उसका नहीं था। पूछा, "मौसी! लावण्य कहां है?"

"क्या पता बेटा, घर में ही कहीं होगी।"

"अभी तो उसके पढ़ाने का समय शेष नहीं हुआ है।"

"ज़ान पड़ता है कि इन लोगों के आने से छुट्टी लेकर घर के अन्दर चली गई है।"

"चलो, एक बार देख आएं, क्या कर रही है।"

योगमाया को लेकर अमित घर के अन्दर गया। सामने और भी कोई सजीव वस्तु है, इसको उसने पूरी तरह अस्वीकार कर दिया।

सिसी कुछ चिल्लाकर बोली, "अपमान! चलो केटी, घर चलें।"

केटी की जलन कम नहीं थी, किन्तु अन्त तक देखे बिना जाना नहीं चाहती।

ससी ने कहा, "कोई फल नहीं होगा।"

कुछ और समय बीत गया। सिसी फिर बोली, "चलो भाई, अब ज़रा भी ठहरने की इच्छा नहीं होती।"

किन्तु केटी बरामदे में धरना दिए बैठी रही। बोली, "उन्हें निकलना तो इसी तरफ से पड़ेगा।"

आखिरकार अमित बाहर आया; साथ में लावण्य को भी ले आया। लावण्य के मुंह पर निर्लिप्त शान्ति विराजती है। उसमें ज़रा भी क्रोध नहीं है, स्पर्धा नहीं है, अभिमान नहीं है। योगमाया पीछे के कमरे में ही थीं; उनकी बाहर आने की इच्छा न थी। पर अमित उन्हें पकड़ लाया। एक क्षण में ही केटी ने लावण्य की अंगुली में पड़ी हुई अंगूठी को देख लिया। सिर का खून खौल उठा, दोनों आंखें लाल हो गईं, पृथ्वी को लात मारने की इच्छा हुई।

अमित बोला, "मौसी, यह मेरी बहिन, शमिता, है। जान पड़ता है, पिताजी ने हमारे नाम से तुक मिलाने के लिए यह नाम रखा था परन्तु रह गया वह अमित्राक्षर, अतुकान्त बनकर। ये केतकी हैं, मेरी बहिन की सखी।"

इसी बीच एक और उपद्रव हो गया। सुरमा की एक पालतू बिल्ली के घर से बाहर निकलते ही टैबी ने अपनी कुत्ता-नीति के अनुसार उसे युद्ध-घोषणा का उचित कारण मान लिया। वह आगे जाकर भूंकता पर उसके उद्यत नाखून और फुस्कार से डरकर पीछे लौट आता और दूर से ही अहिंसक गर्जन-नीति को अपनी वीरता प्रकट करने का साधन समझ काम में लाता और ज़ोर से भूंकता। बिल्ली उसके प्रतिवाद की ओर ज़रा भी ध्यान दिए बिना पीठ उठाए हुए अन्दर चली गई। इस बार केटी से नहीं सहा गया। गुस्से से कुत्ते का कान ऐंठने लगी। इस कान ऐंठने का बहुत-सा अंश अपने भाग्य के प्रति ही था। कुत्ते ने कांव-कांव द्वारा इस असद्व्यवहार पर अपना तीव्र मत प्रकट कर दिया। भाग्य चुपचाप हंस पड़ा।

इस गोलमाल के ज़रा बंद होने पर अमित ने सिसी को लक्ष्य कर कहा, "सिसी, इन्हींका नाम लावण्य है। मेरे मुंह से कभी तुमने इनका नाम नहीं सुना, किन्तु जान पड़ता है और दस के मुंह से सुना होगा। इनके साथ कलकत्ता में, अगहन महीने में मेरा ब्याह होने का निश्चय

हो गया है।"

केटी ने अपने मुंह पर हंसी खींच लाने में विलम्ब नहीं किया। बोली, "आई कांग्रेचुलेट[1]। जान पड़ता है कि संतरे का मधु पाने में विशेष बाधा नहीं हुई। शायद रास्ता कठिन नहीं था और मधु उछलकर स्वयं मुंह में आ गया।"

सिसी, अपने स्वाभाविक अभ्यास के अनुसार ही 'ही-ही' करके हंस पड़ी।

लावण्य समझ गई कि उसकी बात में तीखा व्यंग्य है। परन्तु उसका पूरा अर्थ न समझ सकी।

अमित ने उससे कहा, "आज जब मैं बाहर जा रहा था तब इन लोगों ने मुझसे पूछा था कि कहां जा रहे हो? मैंने कह दिया था कि वन्य मधु की खोज में। इसीलिए ये हंस रही हैं। इसमें दोष मेरा ही है। मेरी किस बात में हंसी नहीं है, लोग इसे समझ ही नहीं पाते।"

केटी ने शान्त स्वर में ही कहा, "संतरे का मधु पाकर तुम्हारी तो जीत हो गई, अब जिससे मेरी भी हार न हो, ऐसा भी कुछ कर दो।"

"बोलो, क्या करना होगा।"

"नरेन के साथ मैंने एक बाज़ी लगा रखी है। उसने कहा था—जहां जेण्टिलमैन लोग जाते हैं, वहां कोई तुम्हें (अमित को) नहीं ले जा सकता, तुम रेस देखने नहीं जा सकते। मैंने इसी अपनी हीरे की अंगूठी का दांव लगाकर कहा—तुम्हें रेस में ले ही जाऊंगी। इस क्षेत्र में जो झरने हैं, जो मधु की दुकानें हैं, सबको खोजती हुई अन्त में इस स्थान पर आकर तुम्हें पाई हूं। बोलो न सिसी बहिन, अंग्रेजी में जिन्हें 'वाइल्ड गूज़' कहते हैं, उन वन्य हंसों के शिकार में कितना भटकना पड़ा है!"

सिसी कुछ न कहकर हंसने लगी। केटी बोली, "वह कहानी याद आती है, तुम्हींसे एक दिन मैंने सुनी थी अमिट! कोई ईरानी फिलासफर (दार्शनिक) अपनी पगड़ी के चोर का पता लगा सकने के कारण कब्रिस्तान में जाकर बैठ गया। कहता था—भाग के जाएगा कहां? मिस

---

१. मैं बधाई देती हूं।

लावण्य ने जब कहा था कि मैं उन्हें नहीं जानती तो मैं चक्कर में पड़ गई थी। किन्तु मेरे मन में आया कि घूम-फिरकर उन्हें इस कब्रिस्तान में आना ही पड़ेगा।"

सिसी अट्टहास कर उठी।

केटी ने लावण्य से कहा, "अमिट ने आपका नाम नहीं लिया, किन्तु मधुर भाषा में घुमाकर कहा—संतरे का मधु। आपकी बुद्धि बहुत अधिक सरल है, घुमा-फिराकर कहने का कौशल आपको आता नहीं, झट कह उठीं—अमिट को जानती ही नहीं। फिर भी संडे स्कूल के विधान के अनुसार परिणाम नहीं निकला, दण्डदाता ने आप लोगों को कोई दण्ड नहीं दिया; कठिन पथ का मधु भी एक आदमी ने एक ही घूंट में पी लिया और एक अजाने को किसीने एक दृष्टि में जान लिया। यहां क्या मेरे ही भाग्य में हार लिखी है? सिसी, देखो, कैसा अन्याय है!"

सिसी ने फिर अट्टहास किया। टैबी कुत्ता भी उसके इस उद्गार में शामिल होना अपना सामाजिक कर्तव्य समझ विचलित होने के लक्षण प्रकट करने लगा। तीसरी बार उसे डांटना-दबाना पड़ा।

केटी बोली, "अमिट! तुम जानते हो कि यदि हीरे की यह अंगूठी मैं हार जाऊंगी तो जगत् में फिर मेरे लिए कहीं सान्त्वना नहीं रह जाएगी। एक दिन यह अंगूठी तुम्हींने दी थी। एक मुहूर्त के लिए भी मैंने इसे हाथ से कभी नहीं उतारा; यह मेरी देह के साथ मिलकर एक हो गई है। अन्त में क्या इस शिलांग पर्वत पर इसे दांव पर खो देना होगा?"

सिसी ने कहा, "दांव लगाने ही क्यों गई थीं?"

"मन ही मन अपने ऊपर अहंकार और आदमी पर विश्वास था। अहंकार टूट गया; इस बार मेरी 'रेस' की समाप्ति हो गई; मेरी ही हार हुई। मन में आता है कि मैं अब अमिट को राज़ी न कर पाऊंगी। यदि इस अद्भुत तरीके से ही मुझे हराना था तो उस दिन इतना सम्मान करके मुझे यह अंगूठी क्यों पहनाई थी? उस देने में क्या यह बंधन नहीं था कि इस तरह तुम मेरा अपमान होने न दोगे?"

कहते-कहते केटी का गला भर आया। बड़े कष्ट से आँखों के आँसू संभाल लिए।

आज सात साल हो गए। उस समय केटी की वयस अठारह साल की थी। उस दिन अमिट ने अपनी अंगुली से निकालकर यह अंगूठी उसे पहनाई थी। उस समय दोनों विलायत में थे। आक्सफोर्ड का एक पंजाबी युवक केटी पर प्रणयमुग्ध था। उस दिन अमित ने उस पंजाबी युवक से नदी में बोट-रेस खेली थी। अमित की ही जीत हुई थी। जून मास की चांदनी में समस्त आकाश, जैसे सारा आकाश बातें करने लगा था। बीच-बीच में फूलों के प्रचुर वैचित्र्य में जब धरणी अपना धैर्य खो चुकी थी, उसी क्षण अमित ने केटी के हाथ में अंगूठी पहना दी थी। उस समय दोनों में और भी बहुत-सी बातें हुई थीं किन्तु कोई बात छिपी हुई नहीं थी। उस दिन केटी के मुख पर शृंगार का लेप नहीं लगा था; उसकी हंसी सहज थी और भाव के आवेग से उसका मुख लाल हो जाता था। हाथ में अंगूठी पहना देने के बाद अमित ने उसके कान में कहा था :

Tender is the night
And haply the queen moon is on her throne.[1]

उस समय तक केटी को अधिक बातें बनाना नहीं आया था। उसने लम्बी सांस लेकर मन ही मन कहा था, "मॉन अमी।" फरासीसी भाषा के इस शब्द का अर्थ है—प्रियतम।

अब अमित की ज़बान भी रुक गई है। उसे समझ में ही न आया कि क्या कहना चाहिए।

केटी बोली, "यदि मैं बाज़ी हार गई हूं तो मेरा चिरदिन की हार का यह चिह्न अपने ही पास रहने दो अमिट! अपने हाथ में रखकर मैं इसे झूठ बात करने नहीं दूंगी।" इतना कहकर अंगूठी उतारी और टेबल पर रखकर तेज़ी से चली गई। उसके एनामेल—कलई किए हुए मुंह पर से आंसुओं की धारा बह चली।

---

१. आज की रात मृदुल है और दैवयोग से चन्द्ररानी अपने सिंहासन पर हैं।

१६
मुक्ति

शोभनलाल की लिखी एक छोटी चिट्ठी आई है लावण्य के पास :

"कल रात शिलांग आया हूं। यदि भेंट करने की अनुमति दो तो मैं भेंट करने आऊंगा। यदि अनुमति न दोगी तो कल ही लौट जाऊंगा। तुमसे सज़ा मिली, किन्तु मैंने कब क्या अपराध किया है, यह आज तक साफ समझ नहीं पाया। आज तुम्हारे पास वही बात सुनने आया हूं, सुन पाए बिना मन में शान्ति न पा सकूंगा। भय न करो। मेरी और कोई प्रार्थना नहीं है।"

लावण्य की आंखें भर आईं। उसने उन्हें पोंछ डाला। चुपचाप बैठकर अपने अतीत पर गौर करने लगी। जो अंकुर बड़ा हो सकता था, और जिसे उसने मसल दिया, बढ़ने नहीं दिया, वही अपनी कच्चेपन की करुण भीरुता उसे याद आ गई। अब तक तो वह उसके समस्त जीवन पर अधिकार करके उसे सफल बना सकता था। किन्तु उस दिन उसे ज्ञान का अभिमान था, विद्या की एकनिष्ठ साधना थी, उद्धत स्वातंत्र्य-बोध था। तब अपने बाप की मुग्धता देखकर और प्रेम को दुर्बलता मानकर मन ही मन तिरस्कार किया था। आज प्रेम ने उसका बदला चुका लिया है; अभिमान धूल में मिल गया है। जो कुछ उस समय श्वास की भांति सहज हो सकता था, आज कठिन हो गया है। उस दिन के जीवन के उस अतिथि को दोनों हाथ बढ़ाकर अपनाने में आज बाधा आ पड़ी है। किन्तु उसका त्याग करने, उसे छोड़ने में भी छाती फटती है। अपमानित शोभनलाल की उस कुण्ठित-व्यथित मूर्ति की याद आ गई। उसके बाद कितने ही दिन बीत गए हैं—युवक का वह अप्रकट प्रेम इतने दिनों तक न जाने किस अमृत से जीवित रह गया। अपने ही आन्तरिक माहात्म्य से।

लावण्य ने चिट्ठी में लिखा :

"तुम मेरे सबसे बड़े बन्धु हो, प्रिय हो। उस बन्धुत्व की पूरी कीमत चुका सकूं, ऐसा धन आज मेरे पास नहीं है। तुमने कभी कीमत

चाही भी नहीं। आज भी तुम विना किसी दावा के अपनी देने की चीज़ ही देने आए हो। 'लेना नहीं चाहती' कहकर तुम्हें लौटा देने की शक्ति मुझमें नहीं है, वैसा अहंकार भी नहीं है।"

चिट्ठी लिखकर भेज दी तव अमित आकर वोला, "वन्या, चलो आज हम दोनों कहीं घूम आएं।" अमित ने डरते-डरते ही कहा था; सोचा था कि लावण्य आज इसके लिए राज़ी न होगी।

पर लावण्य ने सहज ही कहा, "चलो।"

दोनों निकल गए। अमित ने कुछ दुविधा के साथ ही लावण्य का हाथ अपने हाथ में लेने की चेष्टा की। लावण्य ने ज़रा भी वाधा न देकर उसे अपना हाथ पकड़ने दिया। अमित ने हाथ को ज़रा ज़ोर से दवा दिया और ऐसा करने से मन की वात जितनी प्रकट हो सकती थी उससे ज़्यादा उसके मुंह से कुछ न निकला। चलते-चलते दोनों उस दिनवाली उसी जगह पर पहुंच गए जहां जंगल के वीच खुला हुआ सा है। एक तरु-शून्य पहाड़ की चोटी को सूर्य अपना अन्तिम स्पर्श देकर नीचे उतर गया। सुकुमार हरी आभा धीरे-धीरे सुकोमल नील में मिल गई। दोनों उस ओर मुंह किए खड़े हो गए।

लावण्य धीरे-धीरे वोली, "एक दिन किसीको जो अंगूठी पहनाई थी, आज मुझे देकर उसकी वह अंगूठी क्यों उतरवा ली?"

"वन्या, तुम्हें कैसे समझाऊं? उस दिन जिसे अंगूठी पहनाई थी, और आज जिसने उसे उतार दिया है, वे दोनों क्या एक ही प्राणी हैं?"

लावण्य ने कहा, "उनमें से एक सृष्टिकर्ता के आदर से तैयार हुई थी और दूसरी तुम्हारे अनादर से गढ़ी गई है।"

अमित वोला, "यह वात पूरी तरह ठीक नहीं है। जिस आघात से आज की केटी वनी है, उसकी ज़िम्मेदारी अकेले मुझपर नहीं है।"

"किन्तु मीता, जिसने एक दिन पूरी तरह अपने को तुम्हारे हाथों समर्पित कर दिया था, उसे तुमने अपनी वनाकर क्यों नहीं रखा? जो भी कारण हो, पहले तुम्हारी ही मुट्ठी ढीली हुई है, अलग हुई है, उसके वाद ही दस की मुट्ठी का उसके ऊपर दवाव पड़ा होगा और उसकी मूर्ति वदल गई होगी। तुम्हारा मन खोकर ही दस के मन के अनुसार अपने को सजाने वैठी होगी। आज तो देखती हूं, वह विलायती दुकान

की गुड़िया जैसी हो गई है। यदि उसका हृदय वचा रहता, जीवित रहता, तो यह वात संभव न होती। पर इन सव वातों को जाने दो। तुमसे मेरी एक प्रार्थना है। माननी पड़ेगी।"

"वोलो, ज़रूर मानूंगा।"

"एकाध हफ्ते के लिए अपने दल के साथ तुम चेरापूंजी तक घूम आओ। उसे आनन्द न भी दे सको, पर आमोद तो दे ही सकते हो।"

अमित कुछ देर तक चुप रहकर वोला, "अच्छा।"

उसके वाद अमित की छाती पर अपना सिर रखकर लावण्य वोली, "मीता, तुमसे एक वात कहती हूं, फिर कभी न कहूंगी। तुम्हारे साथ मेरे हृदय का जो सम्वन्ध है उसकी तुमपर कोई ज़िम्मेदारी नहीं है। मैं गुस्से से नहीं कह रही हूं; वल्कि अपना सम्पूर्ण प्यार देकर ही कह रही हूं कि मुझे तुम अंगूठी मत दो, कोई चिह्न रखने की मुझे कोई ज़रूरत नहीं है। मेरा प्रेम निरंजन ही रहे, वाहर की छाया उसपर न पड़े।"

इतना कहकर उसने अपनी अंगुली से अंगूठी उतारकर धीरे-धीरे अमित की अंगुली में पहना दी। अमित ने इसमें कोई वाधा नहीं दी।

संध्या की इस पृथ्वी ने जैसे ही अस्त होती हुई किरणों से आलोकित आकाश की ओर अपना मुंह फिराया, त्योंही उसीकी भांति नीरव, उसीकी तरह शान्त लावण्य ने अपना मुंह अमित के झुके मुंह की ओर कर दिया।

सात दिन वीतते ही अमित लौटकर योगमाया के उसी घर में पहुंचा। देखा, घर वन्द है; सव लोग चले गए हैं। कहां गए हैं, इसका कोई ठिकाना नहीं छोड़ गए हैं।

उसी यूक्लिप्टस वृक्ष के नीचे जाकर अमित खड़ा हो गया। कुछ देर तक सूने मन से वहां घूमता रहा। परिचित माली ने आकर सलाम किया और पूछा, "क्या कमरा खोल दें? भीतर वैठेंगे?"

अमित ने कुछ दुविधा के साथ उत्तर दिया, "हां।"

अन्दर जाकर वह लावण्य के वैठने के कमरे में गया। कुर्सी, टेवल और शेल्फ तो हैं; वे पुस्तकें नहीं हैं। मेज़ के ऊपर दो-एक खाली लिफाफे पड़े हुए हैं; उनके ऊपर किसी अपरिचित हाथ के अक्षरों में

लावण्य का नाम और ठिकाना लिखा हुआ है ; दो-चार काम में लाई हुई निबें और एक छोटी पैंसिल टेवल पर पड़ी है। पैंसिल उठाकर पाकेट में रख ली। इस कमरे के पास ही सोने का कमरा है। लोहे की खाट पर केवल एक गद्दी पड़ी है और आईना लगे टेवल पर एक खाली तेल की शीशी है। दोनों हाथों में सिर पकड़कर अमित उसी गद्दी पर लेट गया ; लोहे की खाट चरमरा उठी। उस कमरे में एक गूंगी शून्यता है। उससे सवाल पूछने पर वह कोई जवाव नहीं दे सकती। वह ऐसी मूर्छा है जो कभी टूटनेवाली नहीं है।

उसके वाद अपने शरीर और मन पर शिथिलता का वोझ लिए अमित अपनी कुटी को चला गया। जो जैसे रख गया था, सव वैसे ही है। यहां तक कि योगमाया अपनी आरामकुर्सी भी वापस नहीं ले गई हैं। समझ गया कि उसे स्नेह करने के करण वे उसे कुर्सी दे गई हैं। उसे लगा जैसे अपने शान्त-मधुर स्वर में उन्होंने उसे अभी-अभी पुकारा हो, 'वेटा !' उस कुर्सी के सामने उसने प्रणाम किया।

सारे शिलांग पहाड़ की शोभा आज नष्ट हो गई है। अमित को अब कहीं सान्त्वना नहीं मिल पा रही है।

१७

अन्तिम कविता

यतिशंकर कलकत्ता के कालिज में पढ़ता है। रहता है प्रेसीडेंसी कालेज के कोलूटोला मेस में। अमित प्रायः उसे घर ले आता है, खिलाता-पिलाता और साथ वैठकर नाना प्रकार की पुस्तकें पढ़ाता है, मोटर में उसे घुमा लाता है।

उसके वाद कुछ समय तक यतिशंकर को अमित की कोई निश्चित खवर ही नहीं मिली। कभी सुना, वह नैनीताल में है, कभी सुना कि उटकमण्ड में है। एक दिन सुना, अमित का एक मित्र ठट्ठा करते हुए कह रहा था कि वह केटी मित्तिर का वाहरी रंग छुड़ाने में लगा हुआ है। वर्णान्तर करने का मनचाहा कार्य उसे मिल गया है। अव तक

अमित बातों-बातों से मूर्ति गढ़ने का शौक पूरा किया करता था; अब उसे मिल गया सजीव मनुष्य; और मनुष्य भी ऐसा जो अपनी रंगीन पपड़ी को निकाल फेंकने के लिए राज़ी है। उसे आशा है कि चरमफल उसे ही प्राप्त होगा। अमित की बहिन सिसी भी कहती है कि केटी तो बिलकुल पहचानी नहीं जाती अर्थात् अब वह बहुत अधिक स्वाभाविक-सी दिखाई पड़ती है। उसने मित्रों से कह दिया है कि अब उसे केटी नहीं; केतकी कहा जाए, क्योंकि किसी शान्तिपुरी साड़ी पहननेवाली लज्जावती स्त्री को जामा-शेमीज़ पहनाने के समान ही यह केतकी को केटी कहना उसके लिए लज्जाजनक है। अमित अकेले में उसे 'केवा' कहकर पुकारता है। लोग तो यह भी कानाफूसी करते हैं कि नैनीताल के सरोवर में नाव बहाकर केटी ने उसकी पतवार पकड़ी है और अमित अब उसे रवि ठाकुर की 'निरुद्देश्य यात्रा' पढ़कर सुनाया करता है। किन्तु लोग क्या-क्या नहीं कहते! यतिशंकर ने समझ लिया है कि अमित का मन पाल चढ़ाकर छुट्टीतत्त्व के मझधार में चल पड़ा है।

अन्त में अमित लौट आया। शहर में बात फैल गई कि केतकी के साथ उसका ब्याह होगा। पर यति ने अमित के मुंह से कभी इसकी चर्चा नहीं सुनी। अमित का व्यवहार भी बहुत कुछ बदल गया है। पहले की तरह अब भी अमित अंग्रेज़ी पुस्तकें खरीदकर यति को भेंट में दिया करता है, परन्तु अब उसके साथ शाम को बैठकर उन पुस्तकों की आलोचना नहीं करता। यति समझ गया है कि आलोचना की धारा अब दूसरे रास्ते से बहने लगी है। आजकल मोटर से घूमने जाते समय वह यति को नहीं बुलाता। यति की जो उम्र है उसमें उसके लिए यह समझना कठिन नहीं है कि अमित की 'निरुद्देश्य यात्रा'-पार्टी में तीसरे आदमी के लिए जगह होना असंभव है।

यति से अब और रहा नहीं गया। अमित के पीछे पड़कर खुद ही पूछा, "अमित दादा! सुना है, केतकी मित्र के साथ तुम्हारा विवाह है।" अमित कुछ चुप रहकर बोला, "लावण्य यह खबर जानती है?"

"नहीं, मैंने उन्हें नहीं लिखा। तुम्हारे मुंह से पक्की खबर न मिलने के कारण ही चुप हूं।"

"खबर तो सच है, पर लावण्य शायद गलत समझ जाएगी।"

यति ने हंसकर कहा, "इसमें भूल मानने, गलत समझने की जगह ही कहां है ! सीधी वात है कि व्याह करोगे तो व्याह ही करोगे।"

"देखो यति, मनुष्य की कोई भी वात सीधी नहीं होती। हम डिक्शनरी (कोष) में शब्द को एक अर्थ से वांध देते हैं, पर वही अर्थ जीवन में जाकर सात टुकड़ों में वंट जाता है, जैसे समुद्र के निकट जाकर गंगा अनेक धाराओं में वंट जाती है।"

"तुम यह कहना चाहते हो कि विवाह का अर्थ विवाह नहीं है ?"

"मैं कह रहा हूं कि विवाह के हज़ार अर्थ हैं। मनुष्य के साथ मिलाकर ही उसका अर्थ ठीक वैठता है, मनुष्य से अलग हटाकर उसका अर्थ लगाने में वह गोरखधन्धा वन जाता है।"

"तव तुम अपना विशेष अर्थ ही क्यों नहीं वता देते ?"

"संज्ञा से नहीं वताया जा सकता; जीवन से वताना पड़ेगा। अगर कहूं कि उसका मूल अर्थ है प्रेम, तो एक और वात में उलझ जाऊंगा। प्रेम की वात तो विवाह की वात से भी अधिक जीवन्त है।"

"अमित दादा, ऐसा होने पर तो वातचीत ही वन्द कर देनी पड़ेगी। वात को कन्धे पर विठाए हुए अर्थ के पीछे-पीछे घूमना पड़ेगा और अर्थ वायें से दाहिने आए तो दाहिने और दाहिने से वायें भागे तो वायें भागना पड़ेगा। इस तरह तो काम नहीं चल सकता।"

"भाई, तुम गलत नहीं कहते। मेरे साथ रहकर तुम्हारा मुंह खुल गया है। संसार में किसी तरह काम तो चलाना ही पड़ता है। इसीलिए वातों की सख्त ज़रूरत पड़ती है। जिन सत्यों को वाणी से, वात से नहीं व्यक्त किया जा सकता, व्यवहार की दुनिया में उन्हें छांट देता हूं और वात को ही प्रकट करता हूं। और उपाय क्या है ? इससे समझ में चाहे न आए, पर आंख वन्द करके काम चला लिया जा सकता है।"

"तव क्या आज की वात विलकुल ही खत्म कर देनी होगी ?"

"यदि यह आलोचना केवल ज्ञान के लिए है और प्राण के लिए, हृदय के लिए नहीं है, तो खत्म करने में कोई दोष नहीं।"

"समझ लो कि प्राण के लिए, हृदय के लिए ही है तो ?"

"शावाश ! तव सुनो।"

इस जगह एक पादटिप्पणी लगा देने में कोई दोष नहीं है। आज-

कल यतिशंकर अमित की छोटी वहिन लिसी के हाथ की वनी चाय प्रायः पिया करता है। अनुमान किया जा सकता है कि इसीलिए उसके मन में इस वात का कोई क्षोभ नहीं है कि अमित तीसरे पहर उसके साथ वैठकर साहित्य की आलोचना क्यों नहीं करता या शाम को उसे मोटर में घुमाने क्यों नहीं ले जाता। उसने अमित को हृदय से क्षमा कर दिया है।

अमित वोला, "आक्सीजन हवा में अदृश्य होकर वहती रहती है, यह उसका एक रूप हुआ। ऐसा न होने पर प्राणों की रक्षा ही नहीं होती। किन्तु उसका एक और रूप है जिसमें वह कोयले के साथ जला करती है। जीवन के नाना कार्यों में उस आग की ज़रूरत पड़ती है—इन दोनों रूपों में से किसीको भी छोड़ना संभव नहीं है। समझ गए ?"

"पूरी तरह तो नहीं समझ पाया, पर समझने की इच्छा है।"

"जो प्रेम व्याप्त भाव से आकाश में मुक्त रहता है, वह हृदय को संग या साहचर्य देता है; जो प्रेम विशेप भाव से प्रतिदिन के सव कुछ से भरा रहता है, वह संसार में आसंग—सहवास—देता है। मैं दोनों को ही चाहता हूं।"

"मैं जान नहीं पा रहा हूं कि तुम्हारी वात ठीक-ठीक मेरी समझ में आ गई है या नहीं। ज़रा उसे और स्पष्ट करो अमित दादा।"

अमित ने कहा, "एक दिन अपने सम्पूर्ण पंख फैलाकर मैंने अपने उड़ने का आकाश पाया था और आज मैंने पाया है अपने रहने का घर, छोटा-सा नीड़। किन्तु मेरा आकाश भी वना हुआ है।"

"किन्तु विवाह में क्या तुम्हारे संग और आसंग एकसाथ नहीं मिल सकते ?"

"जीवन में अनेक सुअवसर मिल सकते हैं किन्तु नहीं मिलते। जिस मनुष्य को आधा राज्य और राजकन्या दोनों एकसाथ मिल जाते हैं उसका भाग्य अच्छा है; जिसे वे इस तरह एकसाथ नहीं मिलते, उसे यदि दैव की कृपा से दाहिनी ओर से राज्य और वाईं ओर से राजकन्या मिल जाती है तो यह भी कुछ कम सौभाग्य की वात नहीं है।"

"किन्तु ?"

"किन्तु तुम जिसे रोमांस कहते हो उसमें कमी पड़ती है, यही न ? क्या हमें गल्प की पुस्तकों में से सांचे में ढला रोमांस ग्रहण करना पड़ेगा ?

बिलकुल नहीं। अपना रोमांस हमीं उत्पन्न करेंगे। मैं अपने स्वर्ग और मर्त्य दोनों में रोमांस की सृष्टि करूंगा। तुम लोग उन्हींको रोमेंटिक कहते हो जो इनमें से एक को बचाने जाकर दूसरे का दिवाला निकाल देते हैं। वे लोग मछली के समान जल में तैरते हैं या बिल्ली की तरह जगह-जगह फिरते हैं या फिर चमगादड़ की तरह आकाश में चक्कर लगाते हैं। मैं रोमांस का परमहंस हूं। मैं एक ही शक्ति से जल, स्थल और आकाश में भी प्रेम के सत्य को प्राप्त करूंगा। नदी के द्वीप पर तो मेरा पूरा कब्जा रहेगा, पर जब मानस की ओर यात्रा करूंगा तो वह होगी आकाश के खुले मार्ग से। जय हो मेरी लावण्य की, जय हो मेरी केतकी की, और सभी ओर से धन्य हो अमित राय।"

यति स्तब्ध होकर बैठा रहा। जान पड़ता है, बात उसे ठीक लगी नहीं। उसका मुंह देखकर अमित जरा हंसते हुए बोला, "देखो भाई, सबके लिए सब बातें नहीं होतीं। मैं जो कुछ कह रहा हूं वह कदाचित् सिर्फ मेरी ही बात हो। उसे अपनी बात समझने पर भूल करोगे और मुझे गाली दोगे। एक की बात पर दूसरे का अर्थ लादे जाने के कारण ही पृथ्वी में इतनी मारामारी और खूनाखूनी हुआ करती है। अब मैं अपनी बात साफ-साफ ही तुमसे न कर दूं। रूपक के रूप में ही कहना पड़ेगा, नहीं तो इन सब बातों का रूप ही नष्ट हो जाता है और बात लज्जित हो उठती है। केतकी के साथ मेरा सम्बन्ध प्रेम का ही है, किंतु वह घड़े में भरे जल के समान है; प्रतिदिन भरूंगा और प्रतिदिन उपयोग करूंगा। और लावण्य के साथ मेरा जो प्रेम है, वह तालाब जैसा है, वह घर लाने की चीज़ नहीं है; मेरा मन उसमें तैरा करेगा।"

यति कुछ कुण्ठित होकर बोला, "किन्तु अमित दादा! क्या दोनों में से एक को ही नहीं चुना जा सकता?"

"जिसके लिए होगा, होगा, मेरे लिए वैसा नहीं है।"

"किन्तु श्रीमती केतकी यदि......"

"उन्हें सब कुछ मालूम है। पूरी तरह समझती हैं या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता, परन्तु समस्त जीवन देकर उन्हें यही समझाऊंगा कि मैं उन्हें कहीं से धोखा नहीं दे रहा हूं, कहीं से वंचित नहीं रख रहा हूं। उन्हें भी यह समझना पड़ेगा कि वे लावण्य के निकट ऋणी हैं।"

"पर श्रीमती लावण्य को तो तुम्हारे विवाह की सूचना देनी पड़ेगी।"

"अवश्य सूचना दूंगा। किन्तु उसके पहले मैं एक चिट्ठी लिखना चाहता हूं, उसे तुम पहुंचा दोगे?"

"पहुंचा दूंगा।"

अमित की चिट्ठी यह है :

"उस दिन सांध्य वेला में राह के अन्त में जाकर जब खड़ा हुआ तब कविता से ही यात्रा का अन्त कर दिया था। आज भी आकर थम गया हूं एक राह के अन्त में। इस मुहूर्त, इस क्षण के ऊपर एक कविता लिखकर रख जाना चाहता हूं। और किसी बात का बोझ नहीं सहा जाएगा। अभागा निवारण चक्रवर्ती जिस दिन पकड़ा गया, पहचान लिया गया, उसी दिन मर गया—बड़ी शौकीन जलचर मछली की तरह। इसीसे तुम्हें अपनी अन्तिम बात बताने के लिए, निरुपाय होकर, तुम्हारे ही कवि का सहारा ले रहा हूं :

तेरी अन्तर्धान-पटी में, खोज रहा तव रूप चिरंतन।
अन्तर की अदृश्य जगती में, है तेरा अन्तिम आगमन।
पाया मैंने शाश्वत मणि-सा सुन्दरि! देखो स्पर्श तुम्हारा।
और पूर्णता से अपनी भर डाला सूना जगत् हमारा।
जीवन में भर गया चतुर्दिक्, जब मेरे अंधियाला।
मन-मन्दिर में संध्यादीप जला, कर दिया उजाला।
विरह-हुताशन में से प्रकटी पूजा-मूर्ति तुम्हारी।
दुःख-ज्योति में प्रकट प्रेम ने दर्शन दिया हमारी।

—मीता"

इसके बाद और भी कुछ समय बीत गया। उस दिन केतकी अपनी बहिन की कन्या के अन्नप्राशन में गई हुई थी। अमित नहीं गया था। आरामकुर्सी पर लेटा पढ़ रहा था। इतने में यतिशंकर ने लावण्य की एक चिट्ठी उसके हाथ में दी। चिट्ठी के एक पन्ने में शोभनलाल के साथ लावण्य के विवाह की सूचना थी। विवाह छः महीने बाद, जेठ में, रामगढ़ पर्वत की चोटी पर होगा। दूसरे पन्ने में बस एक कविता थी :

काल की यात्रा-ध्वनि, सुनते हो मेरे मीत,
रथ उसका है नित्य दौड़ रहा विश्व में,
जगा रहा अन्तरिक्ष मध्य हृत्स्पंदन है।
चक्रपिष्ट अन्धकार घिर-घिरकर आता है,
उसीका तो सुनो, यह छातीफाड़ क्रन्दन है।
उसी धावमान क्रूर काल ने आज दौड़,
पकड़ लिया है मुझे अपने ही जाल में।
और द्रुतरथ में इस अबला को डालकर,
लिए चला जाता है न जाने कहां दूर वह।

जान पड़ता है मैं अजस्र मृत्यु-धार को,
पार कर आई हूं प्रभात के शिखर पर।
रथ का यह द्रुतवेग मेरा पूर्व चिह्न भी,
हवा में उड़ाए जा रहा है व्यंग्य करता।
और लौटने का भी है कोई मार्ग शेष नहीं,
प्रिय ! तुम दूर से जो देखना भी चाहो मुझे।
नहीं चीन्ह पाओगे, इतनी यह दूरी है,
मेरे मीत ! आज यह मेरी विदा-वेला है।

किसी दिन कार्यहीन पूर्ण अवकाश में होगे तुम बन्धु तब।
मंद-मंद शीतल मलय गंधवाह लिए आएगी रात जब।
मंजुल अतीत से वहेगा वह दीर्घ श्वास।
झरी हुई बकुल-कली के जो रुदन से,
कम्पित और खण्ड-खण्ड कर देगा व्यथाकाश,
तभी खोज देखना जो तव प्राण-प्रान्त में।
मेरा कुछ अंश पीछे छूट गया आज है,
वही दिव्य ज्योति देगा विस्मृत प्रदोष में।
कभी वह धरेगा नामहारा प्रिय स्वप्नमूर्ति,
किन्तु नहीं स्वप्न वह,
सर्वाधिक सत्य वही मेरा मृत्युंजय है, मेरा वही प्रेम है।

वही छोड़ आई हूं है शाश्वत वह अर्घ्य मेरा,
तेरे लिए बन्धु; वह नित्य मेरा प्रेम है।
और वही जाती हूं परिवर्तन-धारा में,
काल की कराल प्रिय ! आज विदा-वेला है।

कोई भी तुम्हारी हानि इसमें तो हुई नहीं,
पहले की प्राणरेखा जहां थी वहीं रही।
जानती हूं मर्त्य की है मृत्तिका हमारी, प्रान !
गढ़ी जो हो एक अमृतमूर्ति मेरी पहचान।
आरती उतारना उसीकी संध्या वेला में,
ढूंढ़ लेना मुझे तुम उसी पूजा-खेला में।
मेरे म्लान स्पर्श से दूषित न होगी वह,
मेरी प्यास-भरी भावना के द्रुत वेग से,
कलुषित न होगी वह।
साध से लगाए फूल नैवेद्य-थाल में,
भ्रष्ट होंगे, एक भी न प्रिय ! किसी काल में।
वाणी की तृषा से पूर्ण भावरस पात्र में,
तुमने सजाया जो मानव का भोज है।
उससे न मिश्रित करूंगी निज धूलि-धन,
मम चक्षु-जल-सिक्त होता जो रोज़ है।
जानती हूं मेरी स्मृति-कलिकाएं गूंथकर,
अब भी बनाओगे कविता की माला तुम।
किन्तु स्वप्न-आविष्ट भाव पर न भार होगा,
और बन जाओगे निज के उजाला तुम।
मैं तो चली काल के कराल खर-स्रोत में,
प्रियतम ! आज यह मेरी विदा-वेला है।

मेरे लिए करना न प्राण ! शोक।
मेरे लिए कर्म है, मेरे लिए फैला पड़ा है यह विश्वलोक।
आज भी रिक्त नहीं मेरा यह पात्र है,

'शून्य को करूंगी पूर्ण', मेरा व्रत-मात्र है।
आज तक मेरे लिए लम्बी प्रतीक्षा में
बैठा चुपचाप जो दूर एक मात है।
धन्य वह करेगा मुझे मेरे पास आनकर
यह भी तो हार में प्रेम की ही जीत है।
शुक्लपक्ष से ला रजनीगंधा के वृन्त,
कृष्णपक्ष में जो पूजा-थाल सजा सकता हो।
मेरे गुण और मेरे दूषणों को स्नेह, और
अमित क्षमा की दृष्टि से जो देख सकता हो।
पूजा, अर्चना में और आरती में उसकी,
प्राण और जीवन का मेरे बलिदान है।
तुमको दिया था जो उसपर तुम्हारा स्वत्व,
किन्तु बचे हुए का अब तिल-तिल दान है।
मेरी हृत्-अंजलि में भरकर करुण क्षण
मेरे प्राण-रक्त से ही खेल रहा होली है।
मेरे अनन्त रोदनों की प्राण-व्यथा आज,
प्राण! मेरे माथे की बन गई रोली है।

निरुपम! ऐश्वर्यवान!
आज तक जो कुछ दिया है तुम्हें
वह तो तुम्हारा ही दिया हुआ था मतिमान!
जितना ही लिया, ऋणी उतना ही बनाया हमें।
आज जब जाती दूर, तब क्या और कहूं तुम्हें।
अन्तिम प्रणाम मेरा, तुमको है मीत मेरे!
मैं तो चली—आज यह मेरी विदा-वेला है।